४८

प्रेम-गंगा

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(माधुरी-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का अड़तालीसवाँ पुष्प

प्रेम-गंगा

[प्रेम की रसीली कहानियाँ]

अनुवादक

ईश्वरीप्रसाद शर्मा

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १॥)] सं० १९८२ [सादी १)

प्रकाशक
श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीललितमोहन राय
ललित-प्रेस
१७९, मदन-मित्र लेन, कलकत्ता
[सिर्फ़ टाइटिल और फ्लाई-लीफ़ नवलकिशोर-
प्रेस, लखनऊ में छपा]

श्रीकुमार रमानंदसिंहजी

प्रेमोपहार

जिनकी प्रेम-गंगा ने

थोड़े ही दिनों के भीतर अपनी पवित्रता से

मारे हृदय-क्षेत्र को प्लावित कर दिया है,

उन्हीं राष्ट्रभाषा हिंदी के अनन्य प्रेमी,

द्धा, विनय, विवेक और उदारता की मूर्त्ति,

बनैली-राज्य के अन्यतम अधिपति,

श्रीमान् कुमार रमानंद सिंहजी

के कर-कमलों में

"प्रेम-गंगा"

श्रद्धा, भक्ति और प्रीति के निदर्शन-स्वरूप

सादर समर्पित है।

संपादकीय निवेदन

श्रीयुत पंडित ईश्वरीप्रसादजी शर्मा हिंदी-संसार के एक सिद्ध-हस्त लेखक हैं। आप हिंदी-साहित्य की सेवा जिस उत्साह के साथ कर रहे हैं, वह सब पर प्रगट ही है। यह 'प्रेम-गंगा' आपकी ही चमत्कारपूर्ण लेखनी द्वारा अनुवादित हुई है। इसमें छ कहानियों का संग्रह है। मूल कथाएँ अँगरेज़ी की सुप्रसिद्ध पत्रिका "पियर्सन्स मैगेज़ीन" में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थीं। आख्योपन्यास की कहानियाँ बड़ी ही रोचक और मनोरंजिनी हैं; पर उनमें जिस सामाजिक चित्र का प्रतिबिंब है, वह भारतीय नहीं है। प्रस्तुत कहानियों में मूल लेखक ने भारतीयता की छाप लगाकर उन्हें आख्योपन्यास के आदर्श पर लिखा है। उक्त उपन्यास में जो विशेषताएँ और गुण हैं, वे सभी इन कहानियों में भी अंकित किए गए हैं। कई कहानियों का आधार ऐतिहासिक है। 'स्वयंवर' और 'आत्मबलिदान' में 'संयोगिता' और 'पद्मिनी' की इतिहास-प्रसिद्ध घटनाएँ अनोखे ढंग से परिवर्तित करके लिखी गई हैं। अनुवादक महोदय ने अनुवाद इतना सुंदर, सरल, सरस और मनोरंजक किया है कि उसे पढ़कर मौलिक रचना का भ्रम होता है। हमारा विश्वास है कि औपन्यासिक साहित्य में 'प्रेम-गंगा' का आदर होगा, और प्रेमी पाठक इसमें स्नान करके अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव करेंगे।

दुलारेलाल भार्गव

वक्तव्य ।

विलायत के प्रसिद्ध मासिक पत्र "पियर्सन्स मैगेज़ीन" में "अरेबियन नाइट्स इंटरटेनमेंट" (अलिफ़लैला) के ढंग पर "Indian Nights' Entertainment" (भारतीय रात्रि-विलास)-नामक एक कथा-माला कई महीनों तक निकलती रही थी। अकस्मात् उसकी वह पुरानी फ़ाइल हमारे हाथ लग गई, और हमने उसकी एक कहानी का अनुवाद कर लखनऊ के सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका "माधुरी" में प्रकाशित होने के लिये भेजा; परंतु उक्त पत्रिका के संपादक ने उसे, अनुवाद-निबंध होने के कारण, "माधुरी" में न छापकर अपने द्वारा संपादित "भार्गव-पत्रिका" की दो संख्याओं में क्रमशः प्रकाशित किया, तथा हमसे समस्त कथा-माला का अनुवाद करने के लिये कहा। उनके उसी अनुरोध के फल-स्वरूप यह 'प्रेमगंगा' आज आप लोगों की भेंट की जाती है। आशा है, इसकी कहानियाँ हिंदी-प्रेमियों का वैसा ही मनोविनोद कर सकेंगी, जैसा इन्होंने अँगरेज़ी पढ़ने-वालों का किया था।

इन कहानियों के मूल लेखक श्रीयुत ए० शरत्कुमार घोष नामक एक बंगाली सज्जन हैं आपकी लेखन-शैली बड़ी ही मनो-

लेखनी में वह शक्ति नहीं कि हम अनुवाद में उनकी प्रौढ़ रचना की सरसता सोलह आने खींच लाएँ, तो भी हमने यथाशक्ति अनुवाद को सरस बनाने का प्रयत्न किया है। देखें, हमारे पाठकों को हमारा प्रयास कहाँ तक प्रिय प्रतीत होता है।

आरा, विजयादशमी, १९७६ } निवेदक ईश्वरीप्रसाद शर्मा

विषय-सूची

प्रेम-गंगा

उपक्रमणिका

राजा को रोग था, पर शरीर का नहीं, हृदय का। उन्हें बड़ी व्याधि लगी थी, पर देह की नहीं, मन की। उन्हें दर्द था, पर देह मे नहीं, दिल में। वह दिन-भर पलंग पर पड़े-पड़े बड़ी बेचैनी के साथ करवटें बदलते रहे; पर राजवैद्यों ने उनके रोग का कुछ पता न पाया। उन्होंने नाड़ी देखी; पर रोग का निदान न कर पाए।

सौ-सौ दास उनकी सेवा में उपस्थित थे; पर उनकी लाख सेवा-शुश्रूषाओं से भी राजा को शांति न मिली। उन्होंने सबको अपने सामने से दूर कर दिया। बड़े-बड़े दरबारी, मंत्री, पारिषद, सामंत और सरदार उनसे मिलने आए; पर उन्होंने किसी से बात भी न की। तब चतुर मंत्रियों ने देश-देश की सैकड़ों सुंदरियों को उन्हें रिझाने के लिये भेजा, पर उन्होंने आँख उठाकर किसी की ओर देखा तक नहीं। उन्हें देखकर उनकी व्याधि घटने की जगह और बढ़ गई।

इसी तरह एक पहर रात बीत गई। राजा की बेचैनी बढ़ती चली गई। उनके साथ-साथ राजमहल के अंदर रहनेवाली सभी स्त्रियाँ और दरबार की शोभा बढ़ानेवाले समस्त पुरुष बेचैन होने लगे।

इसी समय राजा को स्मरण हुआ कि उनके यहाँ एक कहानियाँ सुनानेवाला बहुत दिनों से नौकर है। उसने एक बार उनके दुःख के दिनों में कितनी ही रसीली कहानियाँ सुना-सुनाकर उनके दुःख-दर्द को एकबारगी दूर कर दिया था। यह बात याद आते ही उन्होंने उसे बुला भेजा।

कहानीवाले ने आते ही सलाम किया और बड़ी नम्रता से पूछा—"इस दास के प्रति श्रीमान् की क्या आज्ञा है?"

राजा ने कहा—"प्यारे मित्र! इस समय तुम्हीं मेरे एकमात्र अवलंब हो। मुझे प्रेम की रसीली कथाएँ सुनाओ, और मेरे दुःखित मन को शांति प्रदान करो। मुझे ऐसी कथाएँ सुनाओ, जिनमें प्रेम, प्रेमी और प्रेमिका के विचित्र भावों और स्वभावों का वर्णन हो, और इस प्रेम के पीछे पड़कर मनुष्य को कितना कष्ट उठाना पड़ता है, इसका दिग्दर्शन भी हो।"

यह सुनते ही कहानीवाला ताड़ गया कि राजा को और कोई रोग नहीं, प्रेम-व्याधि लगी है। अभी नई ही उमर है, हाल ही सिंहासन पर बैठे हैं, यौवन का प्रिय सहचर प्रेम हृदय में लहरें मार रहा है; ऐसी अवस्था में यह व्याधि उपजी, तो कोई विचित्र बात नहीं। यह बड़े भारी प्रजा-पालक, नीति-

निपुण और राज-कार्य-कुशल नरपति हैं सही ; पर हैं तो मनुष्य ही ! किसी सुंदरी पर दृष्टि गड़ गई होगी, हृदय उसकी ओर खिँच गया होगा, और उसे पाने में बड़ी-बड़ी बाधाएँ दिखलाई देती होंगी। इसी से इनका यह हाल हो रहा है ; क्योंकि राजा हो या रंक, प्रेम का पथ सभी के लिये कंटकमय है ! यह यौवन का रोग—हृदय की व्याधि—बड़ी-बड़ी उपाधियों का घर है !

यही सब सोचकर राजा के उस विनीत सेवक ने, फ़र्श तक दाढ़ी लटकाए, बहुत ही अदब के साथ झुककर, उन्हें सलाम किया, और कहा—"नरनाथ ! प्रेम का पथ बड़ा ही विकट है। इस रास्ते में फूल के पाँवड़े नहीं, काँटे बिछे होते हैं ; तो भी हृदय इस रास्ते पर जाने को लालायित हो उठता है। प्रेमी को तड़पने में ही मज़ा मिलता है ; क्योंकि अपने हृदय के धन को पाने में जितनी ही विकट बाधाओं का सामना करना पड़ता है, परिणाम में उतना ही अधिक सुख होता है। सच्चे प्रेमी लाख विघ्न-बाधाएँ होते हुए भी निराश नहीं होते—सहस्र-सहस्र विपत्तियों को भी वे फूल की तरह सिर पर चढ़ा लेते हैं ; पर हाँ, वह प्रेम सच्चा, अनंत और अथाह होना चाहिए। अच्छा, तो अब सुनिए, मैं आपको प्रेम की विजय की एक कहानी सुनाता हूँ।"

यह कहकर कहानीवाले ने आगे लिखी हुई कुमारी शोभना के

स्वयंवर

महात्माओं का कथन है कि बड़ों की कमज़ोरी उनकी उच्चाकांक्षा ही है, अर्थात् जो जितना ही बड़ा होता है, उसकी उच्चाकांक्षा भी उतनी ही प्रबल होती है। कभी-कभी तो लोग अपने अंतिम उच्चाभिलाष की पूर्त्ति के लिये अपने ही लोगों के जीवन-भर का सुख-सौभाग्य नष्ट कर डालते हैं।

कनौज के राजा आनंदपाल के कलेजे में एक काला नाग बैठा हुआ था—एक बहुत बड़े विस्तृत राज्य के स्वामी होने पर भी वह सन्तुष्ट नहीं थे—स्वयं जरा-जीर्ण होने पर भी उनकी तृष्णा जीर्ण नहीं हुई थी। उस कृपण की तरह, जो केवल नित्य धन जोड़ने की ही अभिलाषा करता है, वह भी नया राज्य, नया प्रभाव, नई सत्ता और नवीन गौरव के सदैव इच्छुक बने रहते थे। एक बात को छोड़कर उनके जीवन की सभी अभिलाषाएँ पूरी हो चुकी थीं। पर वही एक बात उनके समस्त आनंद के घड़े में विष घोल रही थी। सात सरिताओं के जल से सिंचे हुए इस विस्तृत देश में दिल्ली के अंतिम सूर्यवंशी राजा भरत को छोड़कर और कोई उनका समकक्ष या प्रतिद्वंद्वी नहीं था। राजा भरत, अपने पवित्र और गौरव-पूर्ण वंश के महत्त्व के कारण, आनंदपाल से भी ऊँचे माने जाते थे। यही एक बात आनंदपाल को रात-दिन जलाती रहती थी।

एक बार आनंदपाल ने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि चाहे जैसे हो, मैं इस युवा राजपूत से अपने पैर अवश्य ही पुजवाऊँगा। इसी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये, राजा भरत को अपने आगे झुकाने के लिये, आनंदपाल ने एक तरकीब निकालकर सोचा कि बस, इसी प्रकार उसे अपदस्थ कर मैं इस ससनद्-सिक्त देश का एकच्छत्र सम्राट् कहलाने लगूँगा!

बूढ़े और काइयाँ आनंदपाल ने अपने इस उद्देश्य को किसी पर प्रकट नहीं किया। उन्होंने एक दिन राजा भरत को मित्र की तरह न्यौता देकर अपने यहाँ बुलवाया। राजा भरत, सरलहृदय होने के कारण, आनंदपाल के दुष्ट अभिप्राय की बात न ताड़ सके, और बड़ी प्रसन्नता से उनका निमंत्रण पूरा करने के लिये चले आए। आनंदपाल की दिखाऊ दोस्ती और दम-झाँसे में आकर उन्होंने अपने तमाम साथियों और सैनिक-सिपाहियों को लौटा दिया—केवल एक नवयुवक अश्वारोही राजपूत को, जो उनका परम हितैषी बंधु था, अपने साथ रक्खा। दोनों मित्र आनंदपाल के ही महलों में मेहमान होकर रहे।

प्रातःकाल का समय था। अभी तक सारे महल के लोग सोए ही हुए थे। पर राजा भरत की नींद बड़े सवेरे ही खुलती थी, इसीलिये वह शय्या त्यागकर अपने कमरे की खिड़की पर आ खड़े हुए। सामने ही नज़र-बाग़ की फूली-फूली क्यारियाँ दिखाई पड़ीं! कहीं गुलाब, कहीं केवड़े, कहीं जूही, कहीं चमेली, कहीं चंपा के रंग-बिरंगे फूल खिलकर राजा भरत को तरह-तरह की

सुगंध से सुखी बनाने लगे। उनका उनींदा-उदास चेहरा खिल उठा, अलसाए हुए अंगों में नई जान आ गई।

इतने में चमेली के सघन कुंजों के भीतर से बुलबुल चहक उठी। कोयल कुहुक उठी। पपीहा 'पी कहाँ' कहकर पुकार उठा। राजा भरत एक बड़े भारी राज्य के अधीश्वर थे। तो भी अभी नई जवानी थी। वह कल्पना के राज्य में विचरते हुए अलौकिक सुख-स्वप्न देखा करते थे, इसी से चिड़ियों के चहकते ही उनका चित्त चंचल हो उठा—बुलबुल के तराने ने उनके दिल में न-जाने कैसी एक कशिश पैदा कर दी!

आज दस बरसों से, जब से उन्होंने होश सँभाला है, उनका हृदय न-जाने किसकी खोज में बावला-सा बना रहता है। संसार में मनुष्य जिन सब वस्तुओं की अभिलाषा किया करते हैं, वे सब उन्हें प्राप्त थीं। तो भी वह सुखी नहीं थे। वह अपने जीवन में न-जाने किसका अभाव-सा अनुभव करते थे। वह वस्तु ऐसी महान् थी कि वह न तो शब्दों द्वारा उसे प्रकट कर सकते थे, न उसके विषय में किसीको कुछ समझा सकते थे—केवल इसी बात का अनुभव करते थे कि उनके जीवन में न-जाने क्या नहीं है।

इसीलिये वह चिड़ियों की मनोहर बोलियाँ सुन, सिर झुकाए, स्वप्न में पड़े हुए की तरह, चुपचाप खिड़की के पास खड़े हो रहे। इसी समय खिड़की के नीचे जो ग्रीष्मावास बना हुआ था, उसी के अंदर से एकाएक एक अप्सराओं की-सी परम सुंदरी रमणी बाहर निकली। अहा! उसका कैसा सुंदर रूप था।

दर्शन

िमय ग्रीष्मावास के अंदर से एकाएक एक अप्सराओं-सी परम सुंदरी रमणी बाहर निकली — पृष्ठ ६

कैसे खिले कमल-से कपोल, बिंबाफल-से होंठ, नीले कमल-सी आँखें और मृणाल-सी बाहु-वल्लरी! ऐसा सुंदर रूप तो इंद्रलोक में भी दुर्लभ है!

रमणी बड़ी ही सुंदर साड़ी पहने थी, जिसमें चाँद-तारे टँके हुए थे। उसके गले में नौलखा मोती का हार था; कलाइयों में सुंदर सोने के कड़े पड़े थे। माँग हीरे-मोतियों से सँवारी थी, जिनकी आभा से चारों ओर उजेला छा रहा था। रमणी घर के भीतर से निकलकर कुछ देर तक चुपचाप द्वार पर खड़ी रही। राजा भरत की दृष्टि एकाएक उसकी ओर खिंचकर चली गई, और वह स्वप्न में ही मानो चिल्ला उठे—"शोभने! प्रिये! मेरी जीवनदायिनी!" मानो वह जिस वस्तु की खोज में दस बरसों से तड़प रहे थे, वह यही थी!

उनकी यह पुकार सुनते ही चिंतामग्न सुंदरी की चिंता का तार टूट गया, उसने चौंककर ऊपर की ओर दृष्टि की। एक क्षण के लिये चारों आँखें मिलीं, फिर अलग हो गईं। इतनी ही देर में आँखों ने आपस में न-जाने कितनी बातें कह-सुन डालीं। कौन कह सकता है कि इस चक्षु-मिलन ने उन्हें आशा का, प्रीति का और सुखका संदेशा पहुँचाया, अथवा भय, आशंका और निराशा का? रमणी ने झट आँखें नीची कर लीं, और घूँघट डाले बगीचे से बाहर चली गई।

घंटे-भर के भीतर ही राजा भरत ने उस स्वर्गीया सुंदरी के पिता राजा आनंदपाल से उनकी कन्या की पाणि-भिक्षा माँगी

सुनते ही आनंदपाल मुसकिरा उठे, और बोले—"यह तो मेरे लिये बड़े ही सौभाग्य की बात है कि मेरी कन्या दिल्लीश्वर के घर जाय। साथ ही यह आनंद भी है कि आप मेरे पैरो पर झुकेंगे; क्योंकि मेरे परिवार का यह नियम चला आता है कि दामाद को ससुर के पैरों पर गिरना ही पड़ता है।"

कहना नहीं होगा क काइयाँ आनंदपाल कुछ और ही अभिप्राय से यह बात कह रहे थे। वह दिल्ली के राजा को अपने पैरों पर झुकाया चाहते थे—जो बात उनके लिये सपने में भी दुर्लभ थी, उसी को सचमुच कर दिखाना चाहते थे।

उनकी बात सुनते ही प्रेम-मुग्ध राजा भरत के कलेजे में तीर-सा चुभ गया—उन्हें ऐसा मालूम होने लगा, मानो कोई उनका कलेजा ही निकाले लेता हो। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—"तो क्या मेरी दस वर्षों की तपस्या का अंत में यही परिणाम होना था?" उन्हें चारों ओर अंधकार-सा देख पड़ने लगा। नवीन आशा की ज्योति उई भी न थी कि दुर्भाग्य की काली घटा भाग्याकाश में छा गई—यही सोच-सोचकर वह दिल-ही-दिल में पेंचोताव खाने लगे।

अंत में उन्होंने यही निश्चय किया कि अपने कुल की लाज न गँवाऊँगा, जिसका सिर अपने आगे सदा से झुकता आया है, उसे कभी सिर न झुकाऊँगा। अपने जीवन के आनंद के लिये उन्होंने पूर्व-पुरुषों का मान मिट्टी में मिलाना उचित नहीं समझा। वह उदास मुँह लिए अपनी राजधानी को लौट आए।

इस घटना के छः महीने बाद उन पर बिना बादल के ही वज्र घहरा पड़ा। उन्हें संवाद मिला कि राजकुमारी शोभना का स्वयंवर होने जा रहा है। उन्होंने यह भी सुना कि देश-देश के राजा, राजकुमार और अमीर-उमरा उस सुंदरता की खान को पाने की आशा से कनौज में आकर एकत्र हुए हैं।

हाय! सब लोग पहुँचे; पर राजा भरत कैसे जायँ? एक वही तो ऐसे हैं, जो कभी आनंदपाल के आगे सिर नहीं झुका सकते। और लोग तो ससुर मानकर उन्हें प्रणाम कर सकते हैं; पर वह तो कदापि ऐसा नहीं कर सकते। इसीलिये हाथ मल-मलकर पछताते हुए वह रात-दिन अपने राजमहल के अंतःपुर में एकांत-वास करने लगे। उन्होंने एक प्रकार से मनुष्य-मात्र से मिलना बंद कर दिया।

एक दिन आधी रात के समय, जब राजा भरत गाढ़ी नींद में सोए पड़े थे, उनका मित्र और सहचर चाँदसिंह, जिसे राजा के प्रेम-रोग का सारा वृत्तांत मालूम हो गया था, हाथ में नंगी तल-वार लिए हुए उनके सिरहाने आ खड़ा हुआ, और धीरे-धीरे बोला —"देव! एक दिन आपने अपने इस तुच्छ सेवक के लिये अपनी जान आफ़त में डाली थी, आज मैं भी आपके लिये अपना सिर हथेली पर लिए हुए स्वयंवर में जाता हूँ। आपको यह बात मालूम कि मैं ख़ानदानी सिपाही होकर भी लड़कपन से एक मामूली कारीगर के घर पला हूँ! तलवार के साथ ही आज मैं अपने पालने वालों की सिखलाई हुई सारी कारीगर भी काम में लाऊँगा।

यह कह उसने वहाँ से चलना चाहा। इतने में राजा की नींद टूट गई। उनके कानों में चाँद की बातें आहिस्ते-आहिस्ते पड़ चुकी थीं, इसी लिये वह उसे तलवार लिए जाते देखकर उसका दिली इरादा ताड़ गए, और बोले—"मेरे भाई! व्यर्थ का दुःसाहस न करो। वहाँ जाने पर तुम्हारी जान की ख़ैरियत नहीं है।"

चाँदसिंह ने कहा—"भले ही न हो; पर एक बार तो मैं अपने बुद्धि-बल की परीक्षा करूँगा ही। आपने जिस तरह मेरे लिये ख़तरे में जान डाली थी, मैं भी वैसा ही करने को तैयार हूँ। यदि आप सचमुच मुझे जी से प्यार करते हैं, तो यह स्वीकार करें कि मैं इस मामले में जो कुछ करना चाहता हूँ, उसमें आप बाधा न डालेंगे, और वहाँ से सफल होकर लौट आने पर मैं जो कुछ आपसे करने को कहूँगा, उसे भी अवश्य पूरा करेंगे।"

लाचार, राजा को अपने हार्दिक मित्र की ये बातें मान ही लेनी पड़ीं। उन्होंने बड़े प्यार से उसका सिर सहलाते हुए उसे बिदा किया। चाँदसिंह राजा आनंदपाल की चाल मात करने के लिये उसी समय कनौज की ओर चल पड़ा। उसने सोचा कि अपना काम बनाने के लिये मैं सीधा कनौज के राजमहल में ही घुस पड़ूँगा।

(२)

इधर कनौज में भारी धूमधाम और चहल-पहल जारी थी।

स्वयंवर की ऐसी तैयारी हुई थी कि जिसका नाम ! राजमहल से लेकर नदी के किनारे तक तंबू-क़नातों की नई नगरी-सी बस गई थी, जिसमें अलवर, अजमेर, उज्जैन, मथुरा आदि के बड़े-बड़े राजा और राजकुमार अपने सैन्य-सामंतों के साथ डेरे डाले पड़े थे। यही नहीं, सुदूर काश्मीर और दक्षिण के राजे-रजवाड़े भी अपने दल-बल के साथ पहुँचे हुए थे। सबके दिलों में यही एक बात समाई थी कि देखा चाहिए, राजकुमारी शोभना के पाणि-पीड़न का सौभाग्य किसे प्राप्त होता है !

परंतु राजकुमारी शोभना न-जाने किस सोच में थी। उससे न तो खाया-पिया जाता था, न उसे किसी से हँसी-दिल्लगी करने की इच्छा होती थी। कोई नहीं जानता था कि राजकुमारी को कौन-सा दुःख है। उसकी बाल्य-सखी प्रियंवदा उसका यह हाल देख-देखकर बहुत उदास रहती थी ; परंतु लाख चेष्टा करके भी वह राजकुमारी को प्रसन्न नहीं कर सकती थी। उसे यह अच्छा नहीं मालूम होता था कि ब्याही जानेवाली कुमारी इस प्रकार दुःख-भरी सूरत बनाए फिरे।

उस दिन प्रियंवदा ने राजकुमारी को दूर ही से ख़ीमे-तंबुओं की ओर दिखलाते हुए कहा—"राजकन्या ! वह देखिए, लाल और नीले रंग से रँगा हुआ जो सुंदर तंबू दिखलाई देता है, वह नील-गिरि के राजा का है, जिसके यहाँ एक हज़ार हाथी हैं।"

इसके बाद उसने बाईं तरफ़ गड़े हुए तंबू की ओर, जिसमें

सोने-चाँदी की झालर लगी हुई थीं, दिखलाकर कहा—"यह कच्छ के राना साहब का तंबू है, जिनके यहाँ दस हज़ार घोड़े हैं।"

तदनंतर प्रियंवदा ने राजकुमारी शोभन को अनेक अश्वारोही वीरों को दिखलाया, जो अच्छे-अच्छे सजीले घोड़ों पर सवार हो, तरह-तरह की भड़कीली पोशाक चमका रहे थे। परंतु राज-कुमारी का ध्यान उन सबकी ओर नहीं था—वह तो इसी ध्यान में डूबी थी कि छः महीनों से दिल्लीपति की कोई ख़बर नहीं मिली कि वह कहाँ हैं। साथ ही रह-रहकर यह ख़याल भी हो आता था कि वह यहाँ क्यों नहीं आए?

इधर उसके पिता आनंदपाल दिल्लीपति का मान घटाने के लिये उधार खाए बैठे थे। वह सातों द्वीपों के राजों और राज-कुमारों के सम्मुख दिल्ली-नरेश का अपमान करने की तरकीबें सोच रहे थे। वह चाहे जो कुछ सोचते हों, परंतु राजा भरत को यहाँ बुलाने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। इसी लिये उन्होंने उन्हें नहीं बुलाया। हाँ, चूँकि यह परिपाटी परंपरा से चली आती थी कि स्वयंवरा कन्या के प्रधान प्रणयी के स्वयंवर के दरबार मे उपस्थित नहीं रहने से स्वयंवर व्यर्थ हो जाता है, इसलिये उन्होंने चाहा कि राजा भरत का कोई प्रतिनिधि यहाँ उपस्थित हो।

वह इसी चिंता में थे कि उनके दीवान ने उन्हें एक तरकीब सुझाई, जिसे सुनते ही वह हँस पड़े, और पूछने लगे कि क्या सचमुच यह तरकीब तुम्हारे ही दिमाग़ से निकली है? यह सुन

दीवान ने स्वीकार किया कि नहीं, यह तरकीब मुझे राजमहल के वकील ने बतलाई है। इसे सुन राजा आनंदपाल ने वकील को बुलाकर पूछा कि तुमने यह तरकीब क्या आप ही सोचकर निकाली है? इसके उत्तर में वकील ने कहा—"नहीं, यह तरकीब तो मुझसे दरबार के जमादार ने कही है!" इसी प्रकार जब जमादार को बुलाकर पूछा गया, तब उसने कहा कि यह तरकीब शहर के कोतवाल साहब के मस्तिष्क से निकली है। यह सुनकर राजा का कौतूहल बहुत बढ़ गया, और उन्होंने शहर-कोतवाल को तलब किया। कोतवाल ने कहा—"एक दिन मैं शहर में घूमता हुआ चला आ रहा था, उसी समय एक बनिया अपनी दूकान पर बैठा हुक्का पीता हुआ एक दूसरे बनिये से यह बात कह रहा था। मैंने इस बात को सुनकर जमादार से इसके बारे में ज़िक्र किया।" फिर क्या था, वह बनिया भी पकड़ मँगाया गया। उसने कहा—"मुझसे तो यह बात एक सुनार ने कही थी।" कौतूहली राजा ने सुनार को भी बुलवाकर पूछा। उसने कहा—"कुछ दिनों से मेरे यहाँ एक नया कारीगर आकर रहने लगा है। उसी ने मुझे यह बात बतलाई थी।"

आख़िर सुनार के नौकर की भी पुकार हुई। उसने आते ही स्वीकार किया कि हाँ, मैंने ही अपने मन से यह तरकीब सोच निकाली और अपने मालिक को बतलाई थी। यह सुनकर राजा आनंदपाल ने कहा—"सुनो, तुम शीघ्र ही राजा भरत की-सी आकृति की एक मूर्त्ति बनाओ, जो उनके स्थान पर स्वयंवर-

सभा में रक्खी जा सके।" राजा आनंदपाल ने सोचा, यह कारीगर इतनी दूर पर बैठा हुआ राजा भरत की जो मूर्त्ति बनावेगा, वह कभी उनके समान नहीं हो सकती, ज़रूर ही उसमें कुछ फ़र्क़ पड़ेगा। अतएव आए हुए राजा लोग उनकी वह बेडौल मूर्त्ति देखकर खूब हँसेंगे, इसमें शक नहीं।

अपरिचित कारीगर ने कहा—"अवश्य ही मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा, और ऐसी मूर्त्ति तैयार करूँगा, जो ठीक राजा भरत की-सी मालूम पड़ेगी। हाँ, मुझे दरबारे-आम के ठीक सामनेवाले आँगन में थोड़ी-सी जगह मिल जानी चाहिए। चारों ओर टट्टियों से घेरकर मैं उसी के अंदर अपना काम करूँगा। साथ ही आपको इस बात की आज्ञा कर देनी होगी कि कोई वहाँ आकर मेरे काम में विघ्न न डाले, मेरे गुप्त भेदों को जानने की चेष्टा न करे।"

ठीक ऐसा ही हुआ। शिल्पकार को दरबार के सामनेवाले मैदान में जगह दे दी गई, और चारों ओर से ऊँची-ऊँची टट्टियों का घेरा लगा दिया गया। उसी के भीतर बैठा हुआ वह दिन-भर खटखट करने लगा।

उसके चारों ओर के मैदानों में कन्नौज के सिपाही दल-के-दल आकर खड़े होते और शिल्पकार के कार्यों के विषय में अपने-अपने अनुमान लड़ाया करते थे। एक दिन एक बड़ा भारी पियक्कड़, जो अपनी दाढ़ी और गलमुच्छें कपड़े से छिपाए हुए था, वहाँ आया, और अपनी चमकती हुई तलवार घुमा-घुमाकर सब भाइ-

मियों को हटाता हुआ बोला—"ओ सुअर के बच्चो! तुम सब यहाँ क्यों भीड़ लगाए हुए हो? हटो—"

सब लोग इधर-उधर हटकर खड़े हो गए, और उस शराबी की हँसी उड़ाते हुए बोले—"अहा हा! यह तो स्वयं महाराजा साहब की सवारी आ पहुँची! चलो भाइयो! किनारे हट जाओ!"

जो लोग उसके घोड़े के पास ही खड़े थे, वे झट बोल उठे—"अरे भाई! यह तो सचमुच महाराज ही मालूम पड़ते हैं।"

दूसरे चिल्ला उठे—"अरे, यह तो उस पक्के शराबी चोर का लड़का मालूम पड़ता है।"

इसी प्रकार सबने उसे और उसकी चौदह पीढ़ियों को सैकड़ों बुरी-बुरी गालियाँ सुनाईं, और अपनी-अपनी राह चले गए। उस दिन के बाद भी वह शराबी अक्सर वहाँ आता और लोगों को उस शिल्पकार के घेरे के पास नहीं फटकने देता था। तब से उसका वह पट्टीदार चेहरा सबका सुपरिचित हो गया।

(२)

एक दिन अँधेरी रात को एक नक़ाबपोश उस घेरे के पास आ पहुँचा, और तीन बार कोयल की तरह 'कुहू-कुहू' बोला। यह सुनते ही वह कारीगर चुपचाप घेरे के बाहर निकला। उस समय उसका हृदय अपार आश्चर्य के समुद्र में डुबकियाँ खा रहा था।

नक़ाबपोश ने बड़े ही मधुर स्वर से कहा—"लो, इन चीज़ों को

खा-पीकर जी ठंडा करो। मेरी मालकिन ने इन चीज़ों को स्वयं तुम्हारे लिये भेजा है ; क्योंकि इतने दिनों से इस घेरे के अंदर पड़े-पड़े तुमने बड़े दुःख उठाए हैं।" यह कहकर उसने, जो असल में स्त्री थी, एक थाल, जिसमें मिठाइयाँ थीं और ग्लास, जिसमें ठंढा शरबत था, उसकी ओर बढ़ाया। उन्हें हाथ में लेते समय कारीगर की तेज़ निगाह स्त्री की बाँहों और कलाइयों पर पड़ी। देखते ही वह हीरे-मोती के गहनों की चमक से चौंधिया गया, और बोला—"ऐं ! ऐसे कोमल हाथ तो दासियों के नहीं होते ! तुम तो कोई राजकन्या-सी मालूम पड़ती हो !"

वह भी धीरे से बोल उठी—"तुम्हारी बोलचाल भी तो साधारण कारीगरों की-सी नहीं मालूम पड़ती। तुम तो किसी राजा के मुसाहब मालूम पड़ते हो।" यह कहकर उसने एक क्षण-भर के लिये अपनी नक़ाब उलटकर फिर चेहरे को ढक लिया।

शिल्पकार तो यह तमाशा देखते ही भौचक-सा हो रहा। उसी क्षण-भर की देखभाल ने दोनों को बतला दिया कि वे दोनों एक ही रास्ते पर हैं।

रमणी फिर बोली—"देखो, मैं अपनी स्वामिनी को सुखी बनाया चाहती हूँ। तुम भी शायद अपने मालिक के सुख की कामना से ही यह तपस्या कर रहे हो। नमक अदा करने का यही मौक़ा है !" यह सुनते ही शिल्पकार ने उसको अपनी ओर खींचकर बेतहाशा छाती से लगा लिया। तदनंतर बोला—"अच्छा, मालिकों का काम पूरा करके हमें क्या करना होगा ?"

रमणी ने तनिक मुसकिराहट की अदा के साथ कहा—"उसके बाद हमें अपने जीवन को सुखी बनाने का उपाय सोचना होगा।"

इसके बाद उस कारीगर ने धीरे से उस रमणी के कान में कहा—"देखना, परसों ही स्वयंवर है। एक राजा के जीवन और एक राजकुमारी के हृदय पर कल वज्रपात होनेवाला है। इस अवसर पर बड़े साहस और बुद्धिमानी से काम लेना होगा।"

स्वयंवर के एक दिन पहले शिल्पकार ने राजा के पास खबर भिजवाई कि मेरा काम ख़तम हो गया। शाम को उसके शिल्प-भवन का घेरा हटा दिया गया। एक रथ पर नीचे से ऊपर तक कपड़े से ढकी हुई एक मूर्त्ति रख दी गई। दस बड़े मज़बूत जवान उस रथ को दरबारे-आम की ओर खींच ले चले। शिल्प-कार ने कहा—"इस मूर्त्ति पर से कल ही कपड़ा हटाया जाना चाहिए—आज तो इसे इसी तरह ढका रखना चाहिए।"

रात को तीसरे पहर शिल्पकार राजमहल के पहरेदार के पास आकर बोला—"भाई, मूर्त्ति में ज़रा कसर रह गई है, इसलिये मैं उसको मरम्मत करने जाया चाहता हूँ। ज़रा जाने दो, तो अच्छा हो।"

पहरेदार ने बिना कुछ आपत्ति किए ही उसे जाने का हुक्म दे दिया। पर उसने देखा कि शिल्पकार दोनों हाथों से अपना मुँह पकड़े हुए था। पूछने पर उसने कहा कि उसके दाँतों में एकाएक बेतरह दर्द पैदा हो गया है, इसीलिए ठुड्डी पकड़े है।

पहरेदार का हुक्म पाकर वह हथियार लाने के बहाने अपने

निवास-स्थान पर गया। इस बार कई हथियार उसके दोनों हाथों में थे, इसीलिये वह दाँतों का दर्द-दबाने के लिये ठुड्डी को एक कपड़े से बाँधे हुए था। उससे उसका चेहरा छिप सा गया था। फिर किसी ने रोक-टोक नहीं की। चौथे पहर जो नया पहरेदार आया, वह इस मामले में कुछ जानता ही न था; अतएव कुछ पूछ-ताछ करने नहीं आया। उसने प्रभात-काल में देखा कि महल की एक दासी अपनी स्वामिनी के लिये बाग़ से फूल चुन रही है। उसने यह भी देखा कि वह घूँघट की ओट से रह-रहकर उसकी ओर देख लेती है। आख़िरकार जब उससे न रहा गया, तब अपने पहरे पर दूसरे को बिठाकर उस दासी से गप्पें लड़ाने लगा। वह उससे बातें करती हुई रह-रहकर दूर पर किसी वस्तु की ओर देखने लगी। उसने देखा कि रथ के पासवाले खंभे के पास से एक छाया-मूर्त्ति निकली और रथ के अंदर चली गई। उसने और भी देखा कि मूर्त्ति के ऊपर का कपड़ा बड़े ज़ोरों से हिल रहा है। थोड़ी देर हिलने के बाद मूर्त्ति फिर ज्यों-की-त्यों हो गई। यह देख-कर वह कौतूहल-परवश हो वहाँ से चली गई।

(४)

आज ही स्वयंवर है—आज दरबार सबेरे से ही गुलज़ार हो रहा है। चारों ओर सैकड़ों विवाहार्थी राजों की और राजकुमारों की भीड़ लगी हुई है। मध्य में कनौज-नरेश का भड़कीला राज-सिंहासन रक्खा हुआ है, जिसमें शिल्पकारों ने तरह-तरह की कारीगरियाँ कर रक्खी हैं। उस सिंहासन के ही देखने से कनौज

का वैभव झलकता है। सब राजों और राजकुमारों से दूर पर, एक कोने में, वही रथ रक्खा हुआ है, जिस पर कपड़े से ढकी हुई मूर्त्ति विराजमान है।

अकस्मात् परदा हटा ; नगाड़े की आवाज़ और जय-जय की ध्वनि के साथ राजा आनंदपाल आ विराजे। सब राजों और राज-कुमारों ने उनकी सहर्ष संवर्द्धना की। अभिमान से मत्त आनंद-पाल गर्व के साथ मध्य में रक्खे हुए सिंहासन पर बैठकर बोले—"वह देखिए—उस रथ पर दिल्ली के राजा साहब विराज रहे हैं—हम लोगों को उनका भी स्वागत करना चाहिए।"

यह सुनते ही वह सैकड़ों विवाहार्थी राजपुरुष उसी रथ की ओर देखने लगे। सब को मालूम था कि दिल्ली-नरेश भरत इस राजकुमारी के लिये अत्यंत लालायित हैं। इसी से सब लोग उनकी इस तरह बेइज़्ज़ती होती देखकर बड़े ज़ोर से हँसते हुए बोले,—"आइए, श्रीमन् ! आइए ! आपका सहर्ष स्वागत है।"

एक साथ ही सबके बोल उठने से बड़ा शोर गुल मचा। उस अनबोलती मूर्त्ति ने लोगों की इस घृणा और हँसी का कुछ भी जवाब नहीं दिया। कारण, वह तो महज़ काठ की एक बेडौल मूर्त्ति थी! चेहरे पर जगह-जगह ज़ख़्मों के दाग़ से वह और भी बदसूरत दिखाई दे रही थी। परंतु उन लोगों के मुँह से यह घृणा-भरी हँसी और निंदा-भरे वाक्य निकले देर भी नहीं हुई थी कि उनके हृदय यह देखकर काँप उठे कि उस बेजान मूर्त्ति के चेहरे पर भी क्रोध के भाव झलक रहे हैं!

इतने में चारों ओर सुमधुर संगीत-ध्वनि सुन पड़ने लगी। थोड़ी ही देर में, एक साथ ही सौ दासियाँ, तरह-तरह की मनोहर साड़ियाँ पहने वहाँ आ पहुँचीं और ऊँचे मंच पर रक्खे हुए सिंहासन को चारों ओर से घेर कर खड़ी हो गईं। उनके पीछे पाँच सहेलियों से घिरी हुई राजकुमारी शोभना भी आ पहुँची, और सिंहासन के आगे घुटने टेक बैठ रही। ज्यों ही उसने अपना अवगुंठन हटाया, त्यों ही उसके कर-प्रार्थी राजमण्डल में हर्ष, विस्मय, प्रशंसा और आग्रह के भाव एक साथ ही हिलोरें मारने लगे। जिस अतुलनीय सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर वे लोग यहाँ आए हुए थे, उसे आज पहले-पहल देखकर उनकी आँखें निहाल हो गईं।

राजकुमारी के बैठते ही कनौज-पति के कुल-पुरोहित उसकी बग़ल में आ खड़े हुए। वृद्ध ब्राह्मण ने राजकुमारी के सिर पर अपना काँपता हुआ हाथ स्थापित कर कहा—"पुत्री! देखो, तुम्हें आज अपने बाप-दादे की परंपरा के अनुसार इन आए हुए राजों और राजकुमारों में से अपने लिये एक स्वामी पसन्द कर लेना होगा। बस, इन उपस्थित राजपुरुषों के सिवा तुम और किसी को नहीं चुन सकतीं। तुम्हारा वरण ही सर्वोपरि समझा जायगा—यही शास्त्र की आज्ञा है। शिव-पार्वती और लक्ष्मी-नारायण तुम्हें ऐसी मति दें कि तुम अपने अनुरूप स्वामी का वरण कर सको—यही मेरा आशीर्वाद है।"

पुरोहित ने अपना वक्तव्य समाप्त कर ज्योंही राज-कन्या के सिर से हाथ हटाया, त्योंही कुमारी शोभना की सहेली प्रियंवदा

मनोहर फूलों की एक बड़ी-सी माला लिए उसकी बगल में आ खड़ी हुई, और एक-एक करके सब उपस्थित राजन्य-वर्गों का परिचय देने लगी। अंत में बोली,—"दिल्ली के राजा नहीं आए—उनकी जगह उनकी एक निर्जीव प्रतिमा रथ पर बैठी है।" यह कह, उसने वह माला पुरोहित के हाथ में दे दी। पुरोहित ने उसे अभिमंत्रित कर राजकुमारी के हाथ में देते हुए कहा—"पुत्री! अब जो राजपुरुष तुम्हारे मन भावे, उसी के गले में यह माला, माता लक्ष्मी का नाम लेकर, डाल देना।"

बड़े ही धीमे स्वर में प्रियंवदा ने राजकुमारी के कान में कहा—"देखो, सब कुछ ठीक है—केवल तुम्हारे जी कड़ा कर लेने की ज़रूरत है। भगवान् का नाम लेकर आगे बढ़ो।"

परन्तु राजकुमारी के पैर कुछ देर के लिये ज़मीन में गड़-से गए—उससे एक पग भी आगे न बढ़ाया गया। हाथ में माला लिए चुपचाप खड़ी-खड़ी वह न जाने क्या सोचती रही। पर यह क्या? माला के ऊपर यह आँसू की बूँद टपक पड़ी, या माँग का कोई मोती खिसक-कर आ पड़ा? उस दुखिया का दुख भला कौन समझेगा? वह मानों उस समय स्वप्न-संसार में विचरण कर रही थी। उसे वर्तमान के स्थान में अतीत का ऐसा कोई दिन याद आ रहा था, जो अब हृदय का रक्त देने पर भी लौटाया नहीं जा सकता।

एकाएक उसका वह स्वप्न टूट गया, ध्यान छूट गया, उसने आगे को पैर बढ़ाया। वह एक-एक के चेहरे की ओर देखती हुई

सारे सभा-मंडप का चक्कर लगा आई ; पर किसी के गले में उसने माला न पहनाई । अन्त में वह उस निर्जीव प्रतिमा के पास पहुँची । सैकड़ों कामदेव से सुन्दर नवयुवक और ऐश्वर्यशाली राजन्यवर्गों को देखकर भी जो हाथ ऊपर न उठे, उन्होंने ही बड़े प्यार से उस प्रतिमा के गले में माला डाल दी !

अब तो चारों ओर खलबली पड़ गई । शोर-गुल के मारे एक तूफ़ान-सा बरपा हो गया । एक ही साथ हज़ारों मुँह से यह बात निकल पड़ी कि "यह तो हम लोगों का बड़ा भारी अपमान किया गया !"

फिर सब बोल उठे—"इसका बदला खून से लिया जायगा ।"

इतने में नीलगिरि के राजा ने नंगी तलवार लेकर सिंहासन के पास जाकर दिल्ली के राजा को गालियाँ देना शुरू किया और कहा —"इस वरण को मैं नापसंद करता हूँ, मेरे सामने भला उसकी क्या हक़ीक़त है ?"

यह बात पूरी भी न हुई थी कि एक आदमी घोड़े पर सवार हाथ में नंगी तलवार लिए, उनके सामने चला आया और बोला— "बस जनाब ! छोटे मुँह बड़ी बातें न कीजिये ; ज़बान को दाँतों के नीचे ही दबाकर रखिये । दिल्लीश्वर के विरुद्ध एक भी बात कहने-वाले को मैं चुनौती देता हूँ कि पहले मुझसे दो-दो हाथ चलाकर अपने बल-पराक्रम की परीक्षा दें ।"

यह बात सुनते ही सब की निगाहें उसी आदमी की तरफ़ खिंच गईं, और उसे पहचानते ही एक स्वर से अनेक कंठ कह

उठे—"अबे ओ कारीगार! तू साधारण मिस्त्री होकर राजों की बातों में दखल देता है?"

शिल्पकार ने ललकार कर कहा—"अजी, चलो, बड़े आए राजों के तरफ़दार बनने। मैं भी क्षत्रिय का बालक हूँ, और अभी तुम सबको दिखला दूँगा कि इन धमनियों में आर्य-क्षत्रिय का ही उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है।"

यह कहकर शिल्पी ने अपनी तैयार की हुई मूर्त्ति के पास जाकर सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा—"राजन्! देखिए, ये साधारण राजे और राजकुमार आज आपका अपमान करने को उद्यत हैं, और आपका यह अनुरक्त भक्त उनके किए इस अपमान का बदला लेने को तैयार हुआ है। इसकी सहायता कीजिए।"

अब तो नीलगिरि-नरेश से उसकी बातें सही न गईं, और वह तलवार लिये हुए उस शिल्पकार की ओर झपट पड़े, जिसका घोड़ा ठीक उसी शराबी सिपाही के घोड़े के क़द और रूप-रंग का था, जो अक्सर मिस्त्री के घेरे के पास घूमता नज़र आता था।

उन्हें इस प्रकार लड़ने को उतारू देख, पुरोहित ने बादल की तरह गरज कर कहा—"बस, ठहर जाइए। राजकुमारी ने इसी निर्जीव मूर्त्ति के गले में जयमाला डाली है। शास्त्र के अनुसार इसी के साथ उनका ब्याह होना चाहिए।"

पुरोहित की यह बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि एक हलकी-सी चीख़ सब के मुँह से निकल पड़ी। कारण, सबने देखा कि वह निर्जीव प्रतिमा एकाएक हिली और उसने अपनी बाँहें फैलाकर

पास ही खड़ी हुई राजकुमारी शोभना को अपने हृदय से लगा लिया !

भय, विस्मय और आशंका से सब लोग घबराकर बोल उठे—"यह क्या जादू है ? या कोई दैवी माया है ?"

अब तो सब को समझ में आ गया कि राजकुमारी को पाना उनके भाग्य में ही नहीं लिखा है। यदि लिखा होता, तो ऐसा अचंभा कभी न होता ! सब लोग हताश हो, बोल उठे—"यह सब शैतान का कारखाना है, और यह सुनार का नौकर ही उस शैतान का दूत है !"

यह सुनते ही चाँदसिंह के बदन मे आग-सी लग गई। वह तलवार घुमाता और अपना घोड़ा कुदाता हुआ सबके बीच में आकर बोला—"नहीं, महाशयो ! मैं शैतान का नहीं, आपकी ही तरह हड्डी-मांस के बने हुए मनुष्य का दूत, और स्वयं भी मनुष्य ही हूँ। हिम्मत हो, तो एक बार इस तलवार के करश्मे देखिए ! लड़कर ही आज़माइए कि मैं आदमी हूँ या भूत ?"

इतने में सबने देखा कि छाया की तरह एक श्वेतवर्ण हाथी उस रथ के पीछे आकर खड़ा हुआ। साथ ही मूर्त्ति के भीतर से आवाज़ आई—"सुनिए ! स्वयंवर की प्रथा और शास्त्र के विधान के अनुसार राजकुमारी शोभना आज से मेरी हुई।—मित्र ! चुप रहो—मैं तुम्हारे प्रमाण के लिये प्रस्तुत हूँ। ये लोग तुम्हारी क्या खाक परीक्षा लेंगे ?"

मूर्त्ति के भीतर से मनुष्य की-सी कंठ-ध्वनि सुनते ही सब

लोग हैरत में आ गए। वैसे ही सबके आश्चर्य-भरे नेत्रों ने देखा कि उस मूर्त्ति का शिरोभाग दो टुकड़े होकर दोनों ओर गिर पड़ा, और एक मनुष्य का मुखड़ा साफ़ दिखाई देने लगा, जिसकी दाढ़ी और गलपट्टे रूमाल से बँधे थे। सैकड़ों आदमियों ने उस मुखड़े को पहचानकर कहा—"अरे, यह तो वही शराबी घुड़-सवार है!"

यह आश्चर्य समाप्त भी नहीं हुआ था कि पलक मारते ही उस मूर्त्ति ने अपने ऊपर के सब आवरण हटाकर फेंक दिये, मुँह पर का रूमाल दूर कर दिया, और सब के सामने दिल्ली के स्वनामधन्य अधिपति राजा भरत की महिमा-मयी मूर्त्ति सजीव रूप में आ खड़ी हुई! सब ने कहा,—"ऐं? यह तो महाराज भरत हैं!"

"हाँ, मैं ही हूँ—तुम सब क्षुद्र-मंडलाधिपतियों का अधीश्वर दिल्लीश्वर!"—यह कहकर वह अपनी स्वयंवरा पत्नी के साथ उसी घोड़े पर सवार हो गए, जिस पर थोड़ी देर पहले चाँदसिंह चढ़कर आया था। दम-भर में वे यह कहते हुए वहाँ से चल दिए कि "मेरे अधीनस्थ नरपतियो! मेरे विवाह के समय दिल्ली में अवश्य आना।"

परन्तु अपनी बात का धनी चाँदसिंह कुछ सोच-विचार-कर बोला,—"धर्मावतार! बाहर ऊँट खड़ा है। आप तो उस सवार हो जाइये, और रानी साहबा को इसी घोड़े पर रहने दीजिए।"

फिर तो राजा भरत दम-भर भी न ठहरकर चल दिए। सैकड़ों

क्रुद्ध राजों के हाथ एक साथ ही उनके ऊपर तलवार लेकर उठे, पर, वह रुके नहीं। द्वार पर खड़े श्वेतवर्ण हाथी ने किसी को उनका पीछा नहीं करने दिया।

तब वहीं पर खड़ी प्रियंवदा का हाथ पकड़कर चाँद ने कहा—"प्रिये! अब तुम भी मेरे साथ चली ही चलो। देर करने का क्या काम है?"

यह सुनकर लज्जावती प्रियंवदा ज्यों ही आगे बढ़ी, त्यों ही एक मनुष्य उस पर टूट पड़ा। उसने उसे धक्का देकर नीचे गिरा दिया। लाख चेष्टा करने पर भी चाँद फिर उसे न पकड़ सका। तब प्रियंवदा ने कहा—"प्यारे! जाओ—पहले अपना कर्त्तव्य पालन करो—अपने स्वामी को सकुशल घर पहुँचा दो—फिर और बातें करना।"

चाँद टूटा-सा दिल लिए चल पड़ा। हाथी उसे लिए हुए मैदान की राह रवाना हो गया। उस स्वामिभक्त ने प्रभु के लिये प्राणप्रिया का मोह त्याग दिया!

कहानी सुनाने वाले ने हाथ जोड़कर कहा,—

"हे महाराज! इस प्रकार कुमारी शोभना ने अपने हृदय के सर्वस्व को प्राप्त किया और बड़ी धूमधाम से उसका विवाह दिल्ली के अधिपति महाराज भरत के साथ हो गया। राजकुमारी ने निर्जीव प्रतिमा के गले में जयमाल डालकर अपने हृदय-मन्दिर के अधिष्ठाता को सजीव रूप में पा लिया! राजन्, प्रेम—सच्चा प्रेम—ऐसी ही अद्भुत शक्ति रखता है। वह दो बिछुड़े

हुए दिलों को ऐसी ही आश्चर्य-जनक रीति से मिलाया करता है।"

यह सुन, राजाने कहा,—"हे प्रेम-कथा के प्रचारक ! कुमारी शोभना के अभीष्ट-लाभ की कथा तो मैंने सुन ली, पर मेरे दिल में इस बात को जानने की बड़ी अभिलाषा है कि उसकी सखी प्रियंवदा का चाँदसिंह से मिलाप हुआ या नहीं, क्योंकि उस समय तो वह बेचारी अकस्मात् अपने प्रेमी के साथ जाने से रोक ली गई, और उसका प्यारा भी अपने स्वामी के साथ कर्तव्य-पालन करने के लिये चला गया।"

यह सुन, कहानीवाले ने सिर झुकाए हुए कहा,—"राजन् ! प्रेमियों का अंत में मिलाप होता ही है। इसी नियम के अनुसार प्रियंवदा भी चाँदसिंह से मिली, पर उस मिलन में कैसे-कैसे विघ्न आए, इसकी कथा मैं आपको कल रात को सुनाऊँगा।"

यह कह, वह फिर राजा को सलाम कर चला गया, और राजा मन-ही-मन अपनी दशा से राजा भरत की दशा का मिलान करने लगे।

अभिशाप ।

(१)

कहानी सुनानेवाले ने कहा,—"हे; न्याय-मूर्त्ति ! जब देवता चाहते हैं कि उनकी इच्छा-शक्ति का प्रभाव मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से देखें, तब वे मनुष्य को अन्तिम समय तक उसकी निजी इच्छा-शक्ति का पूर्ण प्रयोग करने देते हैं। वास्तव में जो कुछ वे चाहते हैं, वही होता है ; परन्तु वे मनुष्य को अपनी इच्छाशक्ति की महत्ता हृदयंगम करने का अवसर अवश्य दे देते हैं। ऐसी ही बात हमारी इस दूसरी कहानी में भी हुई।

कनौज के लोग बड़े ही चिंतित, दुःखित तथा कौतूहली हो रहे थे। कारण, न जाने कौन-सी ऐसी अद्भुत घटना होनेवाली थी, जिसे वे न तो किसीसे कह सकते थे, न उसकी कल्पना को ही देर तक अपने मन में स्थान दे सकते थे। हाँ, इतना सबको मालूम था कि एक मनुष्य का जीवन धागे से लटक रहा है—वह किसी दम में यम के हाथ में जाया ही चाहता है।

राज-द्वार के फाटक पर पहरा देनेवाले एक राज-कर्मचारी ने अपने पास खड़े एक मनुष्य से कहा,—"भैया ! आज तो राजमहल के अंदर रहनेवाली एक स्त्री को प्राणदण्ड दिया जानेवाला है।"

उसने कहा,—"क्या कहा ? राजमहल के अंदर रहनेवाली एक स्त्री को ?"

पहरेदार ने कहा,—"हाँ, एक प्रधान सहचरी को यह दंड दिया जानेवाला है।"

यह सुन, वह आदमी जिधर से आया था, उधर ही चला गया, और पहरेवाला अपनी नौकरी बजाता हुआ वहीं खड़ा रहा। कानोंकान यह बात नगर-भर में फैल गई। लोगोंने सोचा,—"यह दंड उसे क्यों दिया जा रहा है? क्या कारण है कि उसे इतना बड़ा दंड दिया जा रहा है, और उसके संबंध की बातें, उसके अपराध का कारण लोगों पर प्रकट नहीं होने दिया जाता? जो हो, लोगों के मन में कौतूहल और उत्कंठा के मारे बड़ी हलचल मच गई।

चारों ओर कानाफूसी होने लगी। जहाँ दो-चार आदमी जमा हो जाते, वहीं यह चर्चा छिड़ जाती, और लोग अपना-अपना अनुमान लड़ाने लगते। इसी समय एक फ़क़ीर हाथमें कमंडल लिए, गेरुआ वस्त्र पहने, वहाँ आ पहुँचा, जहाँ कुछ लोग इसी चर्चामें लगे बैठे थे। उसने पूछा,—"क्यों भाई! उस औरत ने ऐसा कौन सा अपराध किया था, जिसके लिये उसे प्राणदंड दिया जानेवाला है?"

फ़क़ीर कोई रमता साधु मालूम पड़ता था। शायद वह किसी तीर्थ की यात्रा करने निकला था। रास्ते में यह नगर देख, यहाँ आ गया, और लोगों के मुँह से एक स्त्री के प्राणदंड की चर्चा सुन, कौतूहली हो, उन लोगों से यह सवाल कर बैठा।

भीड़ में से एक मनुष्य बोल उठा,—"अपराध की क्या पूछते

हो? उसने बड़ा भारी अपराध किया है। राजा के शत्रु को सहायता दी है।"

फ़क़ीर,—"उसे किस तरह का प्राणदंड दिया जायगा, कुछ इसका भी पता तुम्हें है या नहीं?"

वह,—"उसे एक बोरे में बंदकर जीते जी कुएँ में छोड़ दिया जायगा।"

यह सुन, वह फ़क़ीर अपनी राह चला गया। उसके चेहरे पर इस समाचार को सुन, जैसी कालिमा छा गई, वैसी शायद मृत्यु के पंजे में पड़े हुए मनुष्य के चेहरे पर ही दिखलाई पड़ती है। वहाँ से चलकर वह नदी के किनारे पहुँचा और वहीं बैठा-बैठा परमेश्वर से प्रार्थना करने लगा। बड़ी देर बाद वह यह कहता हुआ उठा और चल पड़ा,—"मनुष्य के हाथ मे जहाँ तक कर डालने की शक्ति है, वहाँ तक करने से तो वह कभी बाज़ ही नहीं आता; पर ईश्वरीय न्याय भी तो कोई चीज़ है! मनुष्यकी आखों में जो अन्याय और अपराध है, देवता की आँखों में वही धर्म और कर्त्तव्य है!"

(२)

राजमहल की प्रधाना सहचरी प्रियंवदा ने अपनी प्रियतमा सखी राजकुमारी शोभना को दिल्ली के राजा भरत के साथ निकल भागने में सहायता पहुँचाई थी, इसी अपराध के कारण वह राजकुमारी के साथ—नहीं, नहीं, अपने प्रियतम चाँदसिंह के साथ—

[illegible] हो गई और राजमहल की एक एकांत कोठरी में कैदिनी बनाकर डाली गई है। आज आठ दिनों से वह दिन-रात रोती रहती है और तड़प-तड़प कर दिन बिता रही है। आज उस को प्राण-दंड दिया जानेवाला है। आज उसके अपराध की पूरी सज़ा उसे दी जानेवाली है। लोग तो कहते हैं कि उसे बोरे में बंद कर कुएँ में डाल दिया जायगा; पर उन्हें क्या मालूम कि उसे इससे भी भयंकर दंड दिया जाने को है?

क्रमशः रात हो गई। प्रियंवदा की अँधेरी काल-कोठरी में और भी अंधकार छा गया। वह चुप-चाप बैठी, अपने भाग्य को कोसती हुई, रो रही है। एकाएक उसके कमरे का दरवाज़ा खुला, और एक मनुष्य ने धीरे से उस कमरे के अंदर आकर उसे एक कंबल उढ़ा दिया। इसके बाद वह उसे अच्छी तरह उसमें लपेटकर बाहर ले चला। उसका मुँह उसके कंधे पर था, और कमर उसके दोनों हाथों के बीच दबी थी। इस लिये बेचारी न तो रो सकती थी, न छटपटाने पाती थी। आदमी क्या था, पूरा भूत था—उसके हाथों और शरीर में अमानुषिक बल था। वह समझ गई कि यही यमदूत मेरे प्राण लेने के लिये भेजा गया है।

अनेक घुमघुमोए रास्तों, बरामदों और सीढ़ियों को पार करता हुआ वह आदमी उसे बाहर ले आया, और तीन मोटे-मुस्टंडे जवानों के सुपुर्द कर दिया। एक ने उसके पैर पकड़े, एक ने कमर थामी, और एक ने उसका कंधा अपने हाथ में लिया। इसी तरह वे उसे बड़ी दूर तक लिए चले गए। अब उसे ऐसा मालूम

हुआ, मानों वे तीनों उसे किसी पहाड़ के ऊपर चढ़ाए लिए जा रहे हैं ; क्योंकि तीनों ही पहाड़ की चढ़ाई से थक कर हाँपने लगे थे।

अब तो उनसे चला नहीं जाता। वे पूरे थक चुके हैं। इस लिये उन्होंने प्रियंवदा को नीचे सुला दिया और आप सुस्ताने लगे। थोड़ी ही देर बाद प्रियंवदा के कानों में किसी चीज़ के बड़े ज़ोर से गिरने की आवाज़ सुनाई दी। उसने अनुमान किया कि इस पहाड़ पर किसी जगह घर बना लिया गया होगा—उसीका दर-वाज़ा टूट कर गिर पड़ा होगा।

इसके बाद वे तीनों फिर उसे ढो ले चले। जाते-जाते वे एक जगह रुक गए, और उन्होंने प्रियंवदा को एक दरी पर सुला दिया। उसने सोचा,—"शायद मैं यहीं रखी जाऊँगी ; क्योंकि यदि ऐसा न होता, तो यहाँ दरी काहे को बिछी रहती ? एक ही क्षण बाद उसे फिर ऐसा मालूम पड़ा, मानो किसीने बाहर से दरवाज़ा लगा दिया। उसने सोचा कि जो तीन मनुष्य उसे ले आए थे, वे शायद मुझे यहाँ रख, बाहर से दरवाज़ा बंद कर चले गए। उसने एक बार उठकर यह देखने का इरादा किया कि वह कैसे स्थान में लाकर रखी गई है ; पर उसकी इच्छा पूरी न हुई ; क्योंकि वह अच्छी तरह उस कंबल के साथ बाँध दी गई थी, और हाथ पैर हिलाने से असमर्थ थी। जब वह बड़ा जोर लगाने पर भी अपना बंधन न खोल सकी, तब एक बार चीख मारकर बेहोश गई।

(३)

कितनी देर तक वह बेहोश रही, यह तो उसे मालूम नहीं ; पर जब उसकी आखें खुलीं, तब उसने अपना बंधन खुला हुआ पाया, और अपने सामने एक विकट-वदना वृद्धा रमणी को हाथ में चिराग़ लिए खड़ी देखा। एक बार चिराग़ की रोशनी आँखों पर पड़ते ही उसकी आखें चौंधिया गईं। बुढ़िया का वह डरावना रूप देखते ही वह भय से थर्रा उठी। बुढ़िया की आखों से क्रोध और चेहरे से हिंसा के भाव स्पष्ट प्रकट हो रहे थे। इसी से वह उसे देखते ही काँप गई।

प्रियंवदा को चुपचाप विस्मय-भरे नेत्रों से अपनी ओर देखते देख, वह वृद्धा रमणी एक विचित्र मुद्रा बनाए, उदासी-भरे कंठ से बोली,—" अबके मालूम होता है कि तेरी ही बारी है।"

प्रियंवदा ने गद्गद्-कंठ से पूछा,—"माता! मैं इस समय कहाँ हूं?"

फिर उसी तरह विकट रूप बनाए हुई वृद्धा बोली,—"शैतान के पंजे में!"

यह सुनते ही भय-विह्वला प्रियंवदा सिर से पैर तक काँप गई, और धड़ाम से फ़र्श पर गिर पड़ी। नीचे गिरते-गिरते बोली,—"माता! तुम कौन हो? क्यों मुझे ऐसी भयदायिनी बातें सुना-सुना कर डरवा रही हो?"

यह कह, वह रो पड़ी। बुढ़िया ने दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधे, प्रियंवदा के पास आकर कहा,—"बतला दूँ कि मैं कौन हूँ? मैं हूं साक्षात् प्रतिहिंसा का अवतार! समझी?"

यह कह, उसने इस ज़ोर से अपने मुट्ठी-बंधे हाथ को घुमाया मानों किसी की नाक पर घूँसा जमाने को तैयार हो। इसके बाद वह एक लम्बी साँस ले कहने लगी,—"अच्छा सुन ले मेरी कन्या भी तेरी ही तरह बड़ी सुंदरी थी। उसका-सा रूप, उसके-से गुण, विधाता सब लड़कियों को नहीं देते। उसके-से सुंदर हाथ-पैर, मुँह-नाक, आँख-कान, सबके नहीं होते। एक दिन मैं घर से बाहर गई हुई थी। इतने मे कोई मेरी लड़की को उड़ा ले गया। एक जगह खिड़की पर मैंने मनुष्य के रक्त का चिन्ह देखा। सोचा कि कोई हत्यारा उसे बल-पूर्वक हर ले गया है, और उसने जी भर कर उसका विरोध किया है, इसी लिये उसे घायल भी करता गया है। मैं उसे ढूँढती हुई यहाँ तक आ पहुँची ; मनुष्यों के पद-चिन्ह देखती हुई इस निर्जन स्थान तक चली आई; पर अपनी कन्या को न पा सकी—सिवा चिड़ियों और छिपकलियों के यहाँ कोई मनुष्य-मूर्त्ति नहीं दिखाई दी—मेरी कन्या तो उस समय तक अनंतधाम की यात्रा कर चुकी थी।

सब कुछ सपने-सा मालूम होता था ; पर पीछे मालूम हुआ कि नहीं, मैंने जो कुछ देखा, वह बिलकुल सच्चा था। थोड़ी ही देर बाद मैंने देखा कि मेरी कन्या रोती छटपटाती हुई एक चटाई पर पड़ी है, और एक भयानक मनुष्य उसके सिर पर छुरा ताने खड़ा है। आह ! उस समय का वह भयंकर दृश्य क्या मैं इस जीवन में कभी भूल सकती हूँ ? वह छुरा ताने ही खड़ा रह गया और मेरी फूल-सी सुकमार कन्या का प्राण-पखेरू डर के ही मारे

उड़ गया। उस पापी को छुरा नहीं चलाना पड़ा। वह पुण्यात्मा थी—पापी के हाथों न मरी, पर उसको उसकी हत्या का पाप लग ही गया। उसके चेहरे पर हत्या की छाप पड़ ही गई। वह आप ही आप चिल्लाकर भाग गया। तब से आज सात वर्ष हुए, मैं यहीं बैठी बैठी उस पापी की राह देख रही हूँ; क्योंकि मेरे अंतर्यामी कहते हैं, कि वह फिर यहाँ आएगा, और मैं अपनी कन्या की हत्या का बदला वसूल करने का अवसर अवश्य पाऊँगी।

यह कहते-कहते उस वृद्धा के चेहरे पर जो भयावनी उन्मत्तता झलक रही थी, वह अकस्मात् दूर हो गई। जो भीषण क्रोध उसके अंग-अंग में व्याप रहा था, वह दूर हो गया, और वह केले के पत्ते की तरह काँपने लगी।

थोड़ी देर इसी तरह काँपने के बाद उसने कहा,—"जो लोग तुझे पकड़ लाए हैं, उन्होंने मुझे तुझको खिलाने-पिलाने का भार सौंपा है। यह ले, खा-पीकर निश्चिन्त हो जा।"

यह कह, उसने कुछ खाने की चीजें प्रियंवदा के सामने रख दीं, और जब तक वह खाती रही, तब तक चुपचाप बैठी रही। इसके बाद वह कहने लगी,—"यह स्थान एक राजाका बनवाया हुआ महल है; परंतु किसी महात्मा के शाप के कारण उसका राज्य तहस-नहस हो गया, और यह पार्वतीय प्रासाद तबसे खाली ही पड़ा है। कोई यहाँ कभी आने का साहस नहीं करता। इसीलिये कुछ दुष्टों ने इसे अपना अड्डा बना लिया है, और

यहीं आकर अपनी मनमानी काररवाइयाँ किया करते हैं। सर्व-साधारण या इस देश के शासकों को इस बात का बिलकुल पता नहीं है, पर मुझे सब कुछ मालूम हो गया है। मैं सपने में ही सब बातें देख सुन चुकी हूँ, मुझ से कुछ भी छिपा नहीं है। अच्छा, बेटी! अब तू चुपचाप सो रह। भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह तो पूरा होकर ही रहेगा।

यह कह, उसने उस सुंदरी के और भी बाकी के बंधन खोल दिये। पर इसी समय उसने देखा कि उसकी कमर में करधनी नहीं है। यह देख, वह चौंक पड़ी और बोली,—"बेटी! तेरी करधनी क्या हुई?"

उस देशकी यह चाल थी, कि प्रत्येक बड़े घर की बहू-बेटियां करधनी पहना करती थीं; क्योंकि जिस स्त्री की कमर मे करधनी नहीं रहती, वह न केवल नीच घराने की, बल्कि पतिता भी समझी जाती थी। साथ ही वह करधनी ऐसी पवित्र समझी जाती थी कि सिवा अपने स्वामी के कोई स्त्री किसी दूसरे का हाथ उस पर नहीं पड़ने देती थी। वह करधनी प्रत्येक सती-साध्वी की सच्चरित्रता, साधुता और सतीत्व का चमकता हुआ चिन्ह मानी जाती थी।

वृद्धा की बात सुनते ही प्रियंवदा भी घबड़ा उठी; क्योंकि उन दुष्टों के द्वारा पकड़ी जाने के पहले तक उसकी कमर में करधनी मौजूद थी। वृद्धा ने कहा,—"बेटी! तेरे भाग्य खोटे हैं—अवश्य ही तेरा कुछ अमंगल होने वाला है, तभी तेरी करधनी खो गई है!"

यह कह, वृद्धा चली गई और प्रियंवदा निराश और दुःखित हृदय के साथ फ़र्श पर गिर पड़ी। रात उसने तड़प-तड़प कर करवटें बदलते हुए बिता दी। चिंता, निराशा और मनोवेदना ने उसे सारी रात सोने नहीं दिया। क्रमशः सवेरा हुआ, उषा की उँजियाली प्रियंवदा की उस काल-कोठरी तक आ पहुँची। उसने उठकर देखना चाहा कि वह कैसे स्थान में क़ैद कर रक्खी गई है।

उसने देखा कि वह पुराना भवन एक पहाड़ी के ऊपर बना है, जिसके नीचे कोसों तक फैला हुआ मैदान है। उस कमरे में जिसमें वह क़ैद है, खिड़की है। उसने खिड़की की राह देखा कि पासही एक पीपल का पेड़ है; किन्तु वह भी इतनी दूर पर था कि वह हाथ बढ़ाकर उसकी डाल या पात नहीं छू सकती थी। खिड़की के उस पार कुछ दूर पर एक छोटा-सा बुर्ज़ दिखाई दिया। उसके भीतर से एक-एक करके बहुत से कबूतर निकल कर चारों ओर मंडल-सा बाँध कर बैठ रहे।

यह देखते ही, न जाने क्यों उसके हृदय के भीतर हल-चल सी पैदा हो गई। उसे अपने बालकपन के वे दिन याद हो आए, जब कि उसके पिता के शानदार मकान में इसी तरह हज़ारों कबूतर बसेरा करते, और सदा पंख फड़फड़ाया करते थे। पर हाय! आज उसके वह पिता भी न रहे, और वह एक अत्याचारी के हाथ पड़कर इस निर्जन भवन में बंदिनी की भाँति परतंत्र हो पड़ी है!

उसने अपना घूँघट हटा, खिड़की के बाहर हाथ निकाल, अपने आँचल के छोर को झंडे की तरह हिलाना शुरू किया। यह देखते ही सारे कबूतर आसमान में उड़ गए, और बड़ी दूर चले गए। थोड़ी देर बाद वे फिर लौटे, और भय के मारे उसी बुर्ज़ के नीचे छिप रहे। पर एक बर्फ़ की-सी सफ़ेद और सुंदर चिड़िया उड़ न सकी, और कमज़ोर होने के कारण वहीं बैठी रही! एक बार वह बड़ी कोशिश कर उठी, और हाँफती तड़पती हुई उसी खिड़की के भीतर घुसी; पर उसके सींकचों में पंख फँस जाने के कारण पटसे फ़र्श पर आ गिरी।

प्रियंवदा ने झटपट उस नन्हें से पक्षी को उठाकर हृदय से लगा लिया और कहा,—मेरी प्यारी कबूतरी! बोल, तेरा क्या हाल है?" यह कह वह बड़े प्यार से उस पर हाथ फेरने लगी, और वह छोटी चिड़िया भी ऐसी हृदय से निकली हुई सहानुभूति को देख कर कृतज्ञता भरी आँखों से प्रियंवदा के प्यारे मुखड़े की ओर एकटक देखती रह गई।

कुछ देर तक इसी प्रकार उस पक्षी की देह सहलाती रहने के बाद प्रियंवदा ने कहा,—"प्यारी कबूतरी! क्या तू यहाँ से उड़कर मेरे प्यारे के पास जायगी? और उससे मेरी विपद की बात बतलाएगी? मेरी बहन! अभी उड़कर उस के पास चली जा। उससे कहना कि मुझ चिड़िया के ऊपर एक बड़ा भारी बाज़ झपट्टा मारना चाहता है!"

मानों कबूतरी ने प्रियंवदा की बात का मतलब समझ लिया—

उसने एक बार उस के हाथ को चूम लिया, और झट वहाँ से उड़ चली। प्रियंवदा ने एक सर्द आह भर कर उधर से मुँह फेर लिया।

(४)

"हाँ, सचमुच बड़ा भारी बाज़ झपट्टा मारना चाहता है! तू ऐसी ही चिड़िया थी कि बाज़ अपना लालच न रोक सका।"

ये शब्द सुनते ही प्रियंवदा ने चौंककर ऊपर की ओर देखा, तो एक आदमी क्रोध के साथ ये शब्द कहता हुआ आता दिखाई दिया। वह आदमी अधेड़ उम्र का था—उसकी आँखों और चेहरे से पैशाचिक भाव टपक रहा था, और उसकी भाव-भङ्गी हज़ारों नीच भावनाओं की परिचायक थी! यह सब तो था ही, प्रियंवदा उसे पहचानती भी थी, इसी से और भी डरी, तथा आश्चर्यित हो बोल उठी,—'हे भगवान्! यह मैं क्या देख रही हूँ? सती भगवति! रक्षा करो! दयामयि! मेरे सतीत्व की लाज रक्खो।"

सचमुच वह आदमी उसका पहचाना हुआ था। वह था कनौजका कोतवाल दलभंजन सिंह। उसके ऊपर नगर की समस्त प्रजा के धन-प्राण की रक्षा का भार था। दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करना ही उसका कर्त्तव्य था; परन्तु वह छिपा रुस्तम था—प्रकट में न्याय-मूर्त्ति और छिपे-छिपे बदमाश, शैतान, पाजी, हत्यारा और व्यभिचारी था। वह बहुत दिनों से प्रियंवदा पर दृष्टि गड़ाए हुए था; इसीलिये उस दिन कुमारी शोभना के स्वयंवर के समय जब गोलमाल मचा, तब उसने भी प्रियंवदा को उड़ा ले जाने का इरादा किया था; पर वैसा न कर सका। लाचार,

उसने जब प्रियंवदा को अपने प्रेमी की ओर जाते देखा, तब धीरे से एक ओर से निकलकर उसे पकड़ लिया, और उसे अपने प्यारे के पास नहीं पहुँचने दिया। इसके बाद ही उसपर शत्रु की सहायता करने का अपराध लगाया गया, और वह राजमहल की ही एक कोठरी में क़ैद कर दी गई।

कोतवाल को देखते ही प्रियंवदा ने शर्म से सिर नीचा कर लिया। कोतवाल मतवाली आँखों से प्रियंवदा की ओर देखता हुआ आगे बढ़ा, और बोला,—"मेरी प्यारी हंसिनी! बाज़ अभी तुझे खा डालने के लिये तैयार नहीं है—वह पहले तेरा प्यार हासिल करना चाहता है; क्यों कि ऐसा करने में उसे बड़ा मज़ा मालूम होगा।" यह कह वह वैसी ही हँसी हँस पड़ा, जो किसी निस्सहाय को पंजे में पकड़ पाने पर शैतान के होठों पर दिखाई देती है।

उसने कहा,—"क्यों, क्या तुझे कुछ शक मालूम होता है? यदि मैं न होता, तो तू कल रात को ही कुत्ते की मौत मर गई होती। तुझे बोरे में बन्द कर कुएँ में डाल देने की आज्ञा हुई थी; पर मैंने तुझे इस तरह मरने नहीं दिया—तेरी जगह बोरे में मिट्टी भरकर कुएँ में डाल दी गई, और मेरे नौकर तुझे यहाँ ले आए। अब मैं तुझे अपनी विवाहिता पत्नी बनाऊँगा। तुझे संसार के समस्त सुखों की भागिनी बनाकर बड़े स्नेह से रक्खूँगा।"

इतने में न जाने कौन उसके पीछे आ खड़ा हुआ। कोतवाल चौंककर पीछे की ओर मुड़ा, और उसने देखा कि वही पगली

बुढ़िया उसके पीछे आ खड़ी हुई है। कोतवाल से चार आँखें होते ही बुढ़िया के नेत्र आग की चिनगारी की तरह चमक उठे। वह क्रोध-भरी मुद्रा से उसकी ओर देखने लगी। थोड़ी देर तक कोतवाल के चेहरे की ओर एकटक देखती रहने के बाद बुढ़िया ने कहा,—"बस ! यही है—यही है, मेरी कन्या की हत्या करनेवाला पापी, नारकी, हत्यारा ! यह देखो, इसकी गरदन पर ये कैसे दाग़ हैं !"

यह कहते-कहते बुढ़िया पिशाचिनी की भाँति अट्टहास्य कर उठी। उसने देखा कि उसकी गरदन पर उँगली के नखों के गहरे दाग़ मौजूद हैं—मानों किसीने मरते समय इस हत्यारे की गरदन को जी भरकर खचोर डाला था, इसीसे दाग़ पड़ गए। घाव तो कभी के सूख गए, पर इस समय उत्तेजना के कारण कोतवाल की रगों में बड़ी तेज़ी से खून दौड़ रहा था ; इसलिये लाख आराम हो जाने पर भी दाग़ उभर ही आए। बुढ़िया ने वे दाग़ साफ़ देख लिए और कहा,—"एक दुखिया का अभिशाप तेरे सिर पर है। ईश्वर तुझे दण्ड दिए बिना न मानेगा। दुष्ट ! तेरे जैसे पापी को आग भी जलाते हुए डरती है, पानी भी शीतलता प्रदान करते हिचकता है। नारकी कहीं का ! संसार के फल तुझे सदा कड़वे मालूम पड़ेंगे—हवा में उड़नेवाले सभी पक्षी तेरा मांस नोच-नोच कर खायेंगे। ईश्वर करे, तेरा हृदय जल-जल कर खाक हो जाय ! जिस दिन तेरे सिर विजय का सेहरा बँधनेवाला हो, उसी दिन तू कुत्ते की मौत मरे।"

यह कहकर उसने अपने दुःखित हृदय पर हाथ रक्खा, और साड़ीके भीतर हाथ ले जाकर न जाने किस छिपे हुए पदार्थ को ढूँढ़ने लगी। मालूम होता है कि वह अपनी साड़ीके अन्दर कोई ऐसा बहुमूल्य पदार्थ छिपाए हुए थी, जिसे अलग करते हुए उसका कलेजा दो टुकड़े हुआ जाता था। उसने फिर कहा,—"निर्दयी पापी! जब तू अपने मनमें बड़ा भारी आनंद अनुभव करता हो, उसी समय तेरी मृत्यु हो जाय।"

इतने में तीन और भयानक मूर्त्तियाँ वहाँ आ पहुँचीं, और कोतवाल तथा बुढ़िया के बीच में आकर खड़ी हो गईं। यह देख, कोतवाल का चेहरा प्रसन्नता के मारे खिल उठा। उसने अपने अनुचरों से कहा,—"बस, अभी इस बुढ़िया को पकड़ ले जाओ, और इसकी शोख़ी की वाजिब सज़ा दो।"

हुक्म पाते ही वे तीनों उस बुढ़िया को पकड़ने के लिये दौड़ पड़े। वह उन्हें आते देखते ही भय से थर्रा उठी, और बिछे हुए फ़र्श पर गिर पड़ी। तीनों शैतान उसे पकड़ कर ले चले; उसकी साड़ी के अन्दर छिपी हुई न जाने कौन-सी चीज़ वहीं गिर पड़ी। किसीने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। सबकी चिंता के स्रोत और ही तरफ़ बह रहे थे। वृद्धा ने जाते-जाते कहा,—"आजही रात को तू काली मैया का कलेवा होगा। काली माता का अभिशाप तेरे सिर पर है, और उनका काला नाग आज तुझे डँसे बिना नहीं छोड़ेगा, यह तू निश्चय जान ले।"

पर उसकी बकझक की तनिक भी परवा न कर, वे तीनों

बदमाश उसे पकड़ ले गए और एक बोरे में बंद कर पहाड़ के एक कोने में पटक आए।

(५)

इधर कोतवाल ने कुमारी प्रियंवदा से कहा,—"अच्छा, देख, आज मैं तेरे साथ विवाह अवश्य करूँगा। जी कड़ा कर ले, आज ही रात को तू मेरी पत्नी होगी।"

यह कह, वह चला गया, और प्रियंवदा निराशा के अथाह समुद्र में गिर पड़ी। वह समझ गई कि अब इस पापी के पंजे से मरे बिना मेरा छुटकारा नहीं है। यह विचार मन में उत्पन्न होते ही वह ऐसी घबराई कि उसके होशोहवास जाते रहे, और वह संज्ञा-शून्य हो, उखड़ी हुई लता की भाँति, नीचे गिर पड़ी।

सूर्य पश्चिम गगन में जा विराजे। संध्याकी अँधेरी धीरे-धीरे घिरने लगी। बस, अब एक ही घंटे में सारा संसार अंधकार-मय हो जायगा। इसी समय प्रियंवदा के कानों में हजारों पक्षियों के पंख फटफटाने का शब्द सुनाई दिया, और वह चौंक-कर उठ बैठी। उसने खिड़की के पास आकर देखा, कि हजारों कबूतर इधर-उधर से उड़कर आते और उसी बुर्ज़ में घुसते चले जाते हैं। उसका कलेजा काँपने लगा—एक निराशा-भरी आशा मन में जग पड़ी।—"क्या दयामयी माता ने मेरी पुकार सुन ली? सती पार्वती ने मुझे उबारने का विचार कर लिया? क्या वह कबूतरी मेरे प्यारे के पास मेरा संदेशा ले गई थी? क्या वह उसे मेरी विपद् की बात बतलाकर फिर लौट आई है?"

इसी तरह की सैकड़ों, आशापूर्ण कल्पनाएँ उसके हृदय में उदय हो आईं। पर क्या ऐसा होना संभव था? नहीं—उसके भाग्य में जो बदा है, वह तो अब अदा ही होनेवाला है।

उसने फिर खिड़की के बाहर अपनी साड़ी का छोर निकाल कर हिलाना शुरू किया। इतने में वह सफेद कबूतरी दिखाई दी और एक बार आँखों तले आकर फिर उड़ चली। इसी समय एक बाज़ ने उसका पीछा किया, और वह उड़ती हुई फिर उसी खिड़की पर आ बैठी—मानो यही स्थान उसके लिये अशरणों की शरण था! प्रियंवदा ने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ लिया, और उसे प्यार से सह-लाते हुए कहा,—"मेरी प्यारी कबूतरी! तू लौट आई? तू क्यों डर गई? क्या बाज़ ने तेरा पीछा किया था? नहीं, नहीं, तेरा यह कोरा भ्रम था। वह तो कोई और ही था; पर तुझे जैसा बाज़ का भय है, वैसा ही उससे मुझे भी भय था।"

यह कहते-कहते उसके चेहरे पर कालिमा छा गई। कबूतरी को देख कर जो निराधार आशाएँ उसके हृदय में लहलहा उठी थीं, वे मानो नष्ट हो गईं, और वह उसी गद्दीपर आकर धप् से बैठ रही, जिसपर पहले सोई हुई थी। बैठते ही कोई कठिन वस्तु उसके शरीर में गड़-सी गई। उसने गद्दी हटाकर देखा, कि एक संदूकची है! संदूकची चोकोर थी, और उसकी जितनी लंबाई-चौड़ाई थी, उतनी ही गहराई भी। वह किसी सुगंधित वृक्ष की लकड़ी की बनी थी, और उसके चारों कोनों और किनारों पर चाँदी के पत्र मढ़े हुए थे। वह न जाने किस मजबूती से

बंद की गई थी कि प्रियंवदा ने उसे लाख खोलना चाहा; पर खोल न सकी। इसी समय उसकी दृष्टि संदूकची पर अंकित काली की मूर्त्ति पर पड़ी और वह भयावनी खड्गधारणी मूर्त्ति देखते ही वह चौंक उठी। न जाने क्या सोच कर उसने फिर उस संदूकची को वहीं रख दिया, जहाँ उसे पाया था। न जाने किसने उसके कानों में आकर कहा कि यही संदूकची तेरे भाग्य का फ़ैसला करेगी। तो क्या यह साक्षात् भगवती का प्रसाद-चिन्ह है?

वह जब तक उस संदूकची के ध्यान में रही, तब तक यह कबूतरी उसी जगह चुपचाप पड़ी रही। अब के उसने उसे फिर उठा लिया, और उसे दुलारना पुचकारना आरंभ किया। एकाएक उसने देखा कि उसके पैर में एक पतला-सा रेशमी धागा बँधा है। उसने कहा,—"प्यारी कबूतरी! तू इसी बंधन में पड़ने के कारण इतना छटपटा रही थी? यह बात मुझे पहले नहीं मालूम थी, नहीं तो मैं अब तक कभी की तुझे बंधन-मुक्त कर दिए होती। अँधेरे में मैं इसे देख न सकी।"

यह कह, उसने उसका वह रेशमी बंधन खोल दिया। चिड़िया बंधन खुल जाने के कारण पंख फटफटाती हुई उड़ गई। अबके प्रियंवदा ने देखा कि वह रेशमी डोरी बहुत लंबी है। न जाने कई हाथ डोरी खींच लेने पर भी उसका छोर नजर न आया। कोई ३०।४० हाथ डोरी हाथमें आ जानेपर उसने देखा कि अब तो वह कड़ी हो गई है—शायद कोई उसका दूसरा छोर थामे हुए हैं।

एक नई आशा से उसका हृदय-समुद्र आंदोलित हो उठा—उसके मुखड़े पर प्रसन्नता की ज्योति छिटक पड़ी।

पर आशा का दूत न:आकर, उसी क्षण यम का वह दूत आ पड़ा, जिस के भय से उसकी नस-नस में पीड़ा हो रही थी। उसके जीवन, उसके प्राण, और सर्वोपरि उसके सतीत्व का वह लोभी उसी समय वहाँ आ पड़ा।—उसे देखते ही उसकी सारी आशा का तार कच्चे धागे की तरह टूट गया! वह खिड़की के बाहर जीवन, आनंद और आशाके आने की राह देख रही थी, पर उसके बदले वह हिंसक राक्षस आ पहुँचा; जो मनुष्य होकर भी महापिशाच से कम नहीं था। मनुष्य की आशाओं का यही मूल्य है। वह जब रत्न पाने की आशा करता है, तभी हलाहल-विषका कटोरा उसके हाथ आ लगता है!

प्रियंवदा की सारी आशाओं पर पानी फेरने के लिये कोतवाल दरवाजा खोलकर भीतर चला आया। प्रियंवदा ने लज्जा से घूँघट काढ़ लिया, और चुपचाप बैठी अपने भाग्य को कोसने लगी। उस समय उसके हृदय में वही दृढ़ता भरी हुई थी, जो एक सती के हृदय में उस समय उत्पन्न हो जाती है, जब वह अपने स्वामी के साथ ही चिता पर जल मरने के लिये प्रस्थान करती है। वह समझ गई कि अपने जीवन के सार-रत्न-धर्म-की रक्षा के लिये मरना ही मेरे भाग्य में लिखा है। यही सोच-कर वह परमात्मा से मृत्यु के लिये प्रार्थना करने लगी। पर मृत्यु क्या कभी माँगे मिलती है?

कामी कोतवाल कनखियों से प्रियंवदा की ओर देख रहा था, किंतु उसे पत्थर की तरह अचल भावसे बैठी देख, वह क्षण-भर के लिये यह निश्चय न कर सका कि क्या करना चाहिए। न मालूम क्यों उसे कभी कभी ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वह किसी मंदिर में एक निर्जीव प्रतिमा के सामने खड़ा है!

इसी समय उसकी दृष्टि उस रेशमी डोरीपर पड़ी, जो प्रियंवदा ने खींचकर अपने पास जमा कर रखी थी। उसे देख, वह घृणा के साथ बोल उठा,—"क्यों मेरी प्यारी बुलबुल! क्या तुम इस पींजरे से निकल भागना चाहती हो? क्या तुम्हें नहीं मालूम हैं कि ये लोहे के सीकचे तुम्हें बाहर नहीं निकलने देंगे? प्यारी! अब तुम यहाँ से कहीं नहीं जा सकतीं।"

यह कह, उसने एक बड़ी मर्म-भेदिनी दृष्टि प्रियंवदा पर डाली। उस दृष्टि ने प्रियंवदा की रही-सही आशा पर भी पानी फेर दिया। इसके बाद उसने कहा,—"अच्छा, तो प्यारी अब इधर चली आओ! तुम्हारा बाज़ अब तुम्हें अपने पंजे में ले आने को तैयार है।"

प्रियंवदा की आत्मा काँप गई। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वह निराशा और निर्वेद की अंतिम सीमा पार कर मन-ही-मन परमात्मा को गुहराने लगी; अंतरात्मा से की हुई वह प्रार्थना मानो जगदीश ने सुन ली—सोए हुए देव मानों जग पड़े। कोतवाल की दृष्टि उस भेद-भरी संदूकची पर जा पड़ी। उसने उसे देखते ही हाथ में उठा लिया, और घृणा, क्रोध

तथा अनादर के साथ कहा,—"अच्छा, तो क्या यह संदूकची तुम्हारे प्रेमी की भेंट है ? इसमें है क्या चीज़ ? अच्छा, रहो मैं इसे खोलकर देखता हूँ, कि तुम्हारे आशिक़ ने तुम्हें कैसा नज़राना भेजा है ?"

यह कह, वह उस सन्दूकची को अपने घुटनों के बीच दबा-कर खोलने की चेष्टा करने लगा। ऐसा करते समय उसने ज्योंही अपना सिर झुकाया, त्योंही उसकी पगड़ी खिसककर नीचे गिर पड़ी ; परंतु इस ओर कुछ भी ध्यान न देकर वह अपना काम करता ही रहा। उसने सोचा,—"बस, इस संदूकची के खुलते ही मुझे इसके प्रेमी की कुल बातें मालूम हो जायंगी, और तब मैं उस अभागे को भी अच्छी सीख सिखा दूँगा।"

बात पूरी होते-न-होते संदूकची खुल गई; पर यह क्या ? उसमें से यह क्या निकला ? संदूकची उसके हाथ से नीचे क्यों गिर पड़ी ? देखते-ही-देखते उसके चेहरे पर कालिमा क्यों छा गई ? आँखें क्यों निकल पड़ने लगीं ?

अच्छा, यह तो काला नाग मालूम पड़ता है ! कोतवाल "मरा रे बाप !" कहकर चिल्ला उठा। साँप उसके हाथ, कमर, पैर और गर्दन को काट खाता हुआ उसके सिर में लिपट गया। मृत्यु सिर पर खेलने लगी। कोतवाल के मुँह से फेन निकलने लगा— हाथों, पैरों और आँखों की गति बंद हो गई। कुमारी कन्याके पातिव्रत और अछूते सौंदर्य को लालच के साथ देखनेवाली आँख पथरा गईं। नस-नस में भयानक विषकी ज्वाला प्रवेश करने

काल-कवलित कोतवाल ।

चाँदसिंह,—"मेरी प्यारी ! मत घबराओ, मैं पहुँच गय

लगी। उसे ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानो आज तक जिस-जिस को उसने सताया और जान से मार डाला था, उन सभी की आत्माएँ पैशाचिक आनंद के साथ बारंबार कह रही हैं,—"पाप का अंतिम परिणाम यही है। माता काली! चला दो खड्ग इस पापी पर, जिसमें इसके सारे कुकर्मों का उचित दंड इसे मिल जाय!"

एक बार उसने धुँधली आँखों से अपनी फँसाई हुई नई चिड़िया की ओर देखा, और यह सोच-सोचकर और भी मरने लगा कि "दिल की दिल ही में रही, बात न होने पाई!"

इसी समय उस कमरे का दरवाज़ा खोलकर न जाने कौन भीतर चला आया, और बोला,—"मेरी प्यारी! मत घबराओ, मैं पहुँच गया।"

प्रियंवदा का वह भयंकर स्वप्न मानो टूट गया—वह अब तक घूँघट से मुँह छिपाए अपनी अग्नि-परीक्षा की घड़ियाँ बड़े कष्ट से गिन रही थी—उसे न तो बाहरी दुनिया का कुछ ज्ञान था, न कुछ दिखाई-सुनाई पड़ता था। अब के अपने हृदयेश्वर का कंठ-स्वर सुन, उसका दुःस्वप्न टूट गया, और उसने घूँघट हटा, सिर ऊपर उठाकर आगंतुक की ओर देखा

"प्यारे! तुम आ गए? बड़ी कृपा की—प्यारे! मैं तो मर ही चुकी थी। तुम्हारे आने में और एक क्षण की देर होने से ह मैं प्राण-त्याग कर देती!" यह कहती हुई प्रियंवदा ने अपने प्रियतम के वक्षःस्थल में अपना मुँह नन्हे-से बच्चे की तरह छिपा लिया।

चाँदसिंह ने भी बड़े प्यार से उसका अवगुंठन हटाकर उसका मुँह चूम लिया। इसके बाद वह अपनी प्यारी को गोद में उठाए हुए वहाँ से ले चला।

उस समय तक कोतवाल के प्राण उसका चोला छोड़कर चल बसे थे। वह निर्जीव होकर पृथ्वी पर पड़ा हुआ था। प्रियंवदा की दृष्टि उस अत्याचारी के ऊपर पड़ते ही एक संतोष-भरी साँस उसके हृदय से निकल पड़ी। चाँदसिंह ने उसके मुँह पर घूँघट का परदा डालते हुए कहा,—"प्यारी, उस मरे कुत्ते की ओर न देखो—उसने जैसा किया, उसका फल हाथों-हाथ पा लिया।" इसके बाद वह अपने प्यारे बोझ को लिए हुए पहाड़ी से नीचे उतरने लगा।

नीचे आते ही उसने देखा कि हमारी वह पूर्व-परिचिता उन्मत्ता वृद्धा हँसती हुई प्रतिहिंसा के गीत गा और ताली बजा रही है। चाँदसिंह ने उसे देखतेही कहा,—"चुप हो जा; बुढ़िया! अब अपना गाना बंद कर दे। तेरी मनचीता पूरी हो गई।"

परंतु बुढ़िया ने वह बात अनसुनी कर दी, और पगली की तरह बकने लगी,—"मारो, काली मैया! मारो—दुश्मन को छार-खार कर दो। सात वर्षों से मैं तुम्हारी संदूकची को, तुम्हारे हृदय भूषण सर्प को, कलेजे में छिपाए हुए थी—आज उस सर्प को मेरे शत्रु का संहार करने दो।"

चाँदसिंह ने कहा,—"बस कर, बुढ़िया! बस कर। तेरा अभिशाप पूरा हो गया—तेरे शत्रु का काली मयाने संहार कर दिया।"

पर बुढ़िया चुप न हुई। वह उसी तरह बड़बड़ाती रही। चाँदसिंह अपनी प्रियतमा को लिए हुए उस मैदान में चला आया, जहाँ उसके लिये एक ऊँट और एक घोड़ा खड़ा था। चाँदसिंह घोड़े पर और प्रियंवदा ऊँट पर सवार हो गई। इसके बाद वे बड़े आनंद से दिल्ली की ओर चल पड़े।

(६)

आधी रात को दिल्ली में "काली मैया की जय" की ध्वनि गूँज उठी। राजा भरत के प्रिय सहचर चाँदसिंह अपनी प्राणोपमा प्यारी पत्नी प्रियंवदा को लिए हुए दिल्ली में आ पहुंचे। राजा सोए हुए थे। अकस्मात् यह कर्ण-भेदिनी जय-ध्वनि सुनते ही उनकी नींद टूट गई। उन्होंने उसी समय अपने प्यारे मित्र को उसकी भावी पत्नी सहित अपने पास बुलवाकर उनपर हार्दिक आशीर्वादों की वर्षा करते हुए, उनका सप्रेम स्वागत किया। जिसके करते उन्हें अपनी प्रियतमा का लाभ हुआ था, उसे भी अपनी प्यारी से मिल जाते देख, राजा परम प्रसन्न हुए।"

प्रेम-पीड़ित राजा ने कहानी सुनानेवाले से कहा,—"अच्छा अब बाक़ी के क़िस्से कल सुनाना ; पर यह तो कहो, चाँदसिंह ने यह कैसे जाना कि उसकी प्यारी उसी पहाड़ी क़िले में क़ैद है? क्या साक्षात् देवताओं ने ही उसे वहाँका पता बताया था?"

फ़र्श तक झुककर सलाम करते हुए कहानीवाले ने कहा,—"जी हाँ, धर्मावतार! साक्षात् देवताओं ने ही उसे वहाँ का पता बताया था। जब चाँदसिंह अपने मालिक को राजकुमारी शोभा

के साथ दिल्ली तक सकुशल पहुँचाकर दिन-रात सफ़र करता हुआ कनौज में आया, तब उसने सुना कि आज प्रियंवदा को बोरे में बंद कर कुएँ में डाल दिया जायगा। उस समय वह फ़क़ीर के लिबास में था, और इसी वेश में अपनी प्यारी को ढूँढ़ता हुआ वहाँ तक आया था। यह संवाद पा, वह निराश हो जंगल मैदानों की सैर करने के इरादे से निकला, और भाग्यवश उसी पहाड़ी के पास आ पहुँचा, जिसपर वह सूनसान क़िला खड़ा था। दैव-संयोग से जब कोतवाल के तीनों दूत रात के समय प्रियंवदा को बाँध-बूँध कर वहाँ लिए आ रहे थे, तभी उसकी कमर से करधनी निकलकर पहाड़ी के नीचे गिर पड़ी थी। रात-भर वहीं विश्राम करने के बाद जब सवेरे चाँदसिंह की नींद खुली, तब उसने थोड़ी दूर पर पहाड़ी के तल-देश में कोई चीज़ बड़ी तेज़ी से चमकती देखी। उषादेवी ने जितनी उज्ज्वलता फैला दी थी, उससे कई गुनी प्रखर उज्ज्वलता का भंडार लिए हुए सूर्यदेव भी थोड़ी ही देर में पूर्व-गगन में आ विराजे, और चाँदसिंह ने उसी प्रखर प्रकाश में देखा कि वह तो किसी का आभूषण है। यह देखते ही वह वहाँ पहुँचा, और उस आभूषण को उठा लाया। सच है, जब देवता चाहते हैं कि अमुक प्राणी का बाल भी बाँका न हो, तब अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उसका कोई अनिष्ट नहीं कर सकता।

"गहना लाकर चाँदसिंह पहाड़ी के ऊपर की ओर देखने लगा। इसी समय उसे प्रियंवदा का कबूतरों को उड़ाने के

लिये आँचल हिलाना दिखाई दिया। अब तो उसको पूरा निश्चय हो गया कि उसकी प्यारी प्रियंवदा कुएँ में न डाली जाकर यहीं ला रखी गई है। फिर तो उसीने कबूतरी के पैरमें वह रेशम की लंबी डोरी बाँध दी, और इस तरह अज्ञात-भाव से अपनो प्यारी को अपने आगमन की सूचना दे दी। इसके बाद उसने रात को क्या-क्या किया, यह मैं आपको सुना ही चुका हू। बुद्धि-सागर, प्रेमी का पथ कंटक-मय है सही; पर उसके परिणाम में सदा शुभ ही होता है। पर हाँ, वह प्रेम सच्चा हो, बनावटी नहीं। दीन-बंधु! अब मैं अपनी कलवाली कहानी में आपको यह बतलाऊ गा, कि किस प्रकार सच्चे प्रेमने दुर्दैव को मिटाकर देवताओं को ही भाग्य-परिवर्त्तन करने के लिये विवश कर दिया था।"

इसके बाद उसने तीसरी रात को "जीवंत रत्न" नामकी बड़ी विचित्र कहानी राजा को सुनाई।

जीवंत-रत्न ।

(१)

कहानीवाले ने कहा,—"नरनाथ ! कहावत है कि सभी रास्ते मनुष्य को दिल्ली ही पहुँचाते हैं। इसी तरह हमारी कहानी भी घुमा-फिराकर सुननेवाले को एक ही जगह पहुँचा देती है। महाराज भरत ने अपने प्यारे मित्र चाँदसिंह को उसकी सेवाओं के लिये बहुत कुछ पुरस्कार दिया, तो भी उन्हें संतोष न हुआ। वे चाँदसिंह के सभी नाते-गोतेवालों को अच्छे-अच्छे पदोंपर प्रतिष्ठित भी करने लगे। इसी प्रकार उन्होंने चाँदसिंह के सगे भाई हरनामसिंह को भी माणिक की रक्षा का भार सौंपा, और उसे रत्न-रक्षक का पद प्रदान किया।

"हरनाम सिंह बहुत ही कमसिन नवयुवक था और शायद इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी के काम पर नियुक्त किये जाने योग्य नहीं था। उसने हथियार चलाना अलबत्ता सीखा था; पर दरबारियों की तरह रहन-सहन उसने अभी तक नहीं सीखी थी। परंतु राजा यह पद किसी योद्धा को ही दिया चाहते थे—साथ ही वह योद्धा भी ऐसा हो, जो उन्हें व्यक्तिगत रूप से भी प्यार करता हो। इसका कारण यह था कि वह माणिक इस राज्य का ही मानो रक्षक था—उसके खो जाने से इस राज्य के साथ-साथ समस्त

प्रजा पर भी भयानक विपत्ति आ पड़ने की संभावना थी। लोगों का यह पक्का विश्वास था कि इस माणिक के खो जाने पर सारे देश पर विपत्ति के बादल छा जायँगे। यह रत्न राजा के वंश के परम गौरवास्पद, चिरस्मरणीय महाराज प्रतापसिंह का दिया हुआ था, और तब से आज तक वंश-परंपरा से यह रत्न इस राजकुल में बड़ी सुरक्षित रीति से रखा जाता रहा है।

"परंतु उस माणिक के यथार्थ गुण किसी को नहीं मालूम थे। वास्तव में उसमें ऐसी अलौकिक शक्तियाँ भरी थीं, कि यदि उसके सच्चे गुणों को जाननेवाला उसका उचित प्रयोग करे तो वह देवताओं की बराबरी करने लगे। परंतु उस रत्न के वे गुण, और उनका वास्तविक प्रयोग किसी को मालूम ही नहीं था। इसी लिये वह केवल राज्यका रक्षक समझकर बड़ी हिफ़ाज़त से रखा रहता था। जिस सन्दूकची में वह रत्न रखा हुआ था, वह सदा खुली पड़ी रहती थी। संदूकची में एक छोटी-सी मखमली गद्दी पर वह रत्न रखा रहता था। सन्दूकची एक लोहे के सन्दूक में रखी हुई थी, जिसके चारों ओर लोहे के तारोंकी जाली लगी हुई थी।

"वह सन्दूक इसी लिये बन्द नहीं किया जाता था, क्योंकि लोगों का कहना था, कि वह रत्न जानदार है, और अन्य प्राणियोंकी भाँति उसे भी श्वास लेनेके लिये वायुकी आवश्यकता होती है। बहुत दिनोंकी बात है कि यह रत्न एक बार संदूक के भीतर बंद करके रख दिया गया था। तीसरे दिन संदूक खोलकर देखा गया,

तो उसकी चमक एकदम उड़ी हुई मालूम पड़ी, और उसके ऊपर कालापन छाया हुआ दिखाई दिया। यह देख, उसे फिर खुली हवा में रख छोड़ा गया, और धीरे-धीरे उसकी पहली चमक-दमक फिर लौट आई।

"रात के समय ज्योंही चिराग़ जलने लगते, त्योंही उस कमरे में अंदरमहल के दो कंचुकियोंका पहरा बैठ जाता, और एक-एक पहर पर पहरा बदल जाया करता। दिन में बाहर के दो पहरेदार उसपर पहरा देते; परंतु जिस समय राजा उस राह से गुज़रने लगते, उस समय स्वयं हरनाम वहाँ पहरा देता हुआ दिखलाई देता।

"उस कमरे की परली तरफ़ एक छोटा-सा नज़रबाग़ था, जिसमें संगमर्मर के तीन फ़ौआरे बने हुए थे। संध्या के समय जब सूर्य्यनारायण अस्ताचल-चूड़ावलंबी होने लगते, तब अंतःपुर की रहनेवाली सहचरियाँ, जो महारानी शोभना की प्यारी सहेलियाँ थीं, छोटी-छोटी चाँदी की कलसियाँ लिए उन फ़ौआरोंके नीचे बैठ जातीं, और पानी भर-भरकर एक दूसरी पर उछाला करती थीं।

"उन सहेलियों में कमला नामकी एक परम सुन्दरी सहचरी पर सबकी दृष्टि लगी थी। वह बड़ी सौंदर्यशालिनी, लज्जावती और सुशीला थी। वह जब सबके साथ फ़ौआरे की तरफ़ आने लगती, तब बराबर नीची निगाह किए हुए जाती; क्योंकि उसपर हरनाम हृदय से मुग्ध था, और वह भी उसे जी से प्यार करने लगी थी। यह बात उसकी सहेलियाँ भी ताड़ गई थीं, और इसी

लिये उसकी बड़ी चुटकी लिया करती थीं। उन्हें कौतुक करने का, चुहलबाज़ी करने का, यह अच्छा अवसर मिल जाता था और वे उसे ज़बरदस्ती धक्का देकर उस बरामदे की ओर ठेल देती थीं, जहाँ हरनाम पहरा दिया करता था। यह अवसर पाकर हरनाम भी अपनी चहेती से दो-दो बातें कर लिया करता था। लाज-संकोच से मरती हुई कमला भी इस अवसरसे लाभ उठा लेती थी। उधर उसे ठेल-ठालकर सब सहेलियाँ फ़ौआरे के पास चली आतीं, और आपस में कमलाकी ही चर्चा करती हुई जी खोलकर हँसा करतीं। उस हँसी के शोर में उधर के मधुर चुम्बन या प्रेम-पूर्ण निःश्वास को ध्वनि डूब जाती थी।

एक दिन इसी तरह कमला को एकांत बरामदे में पाकर हरनाम ने उसके गले में बाँह डालते हुए कहा,—"क्यों प्यारी! अब मुझसे कितने दिनों तक प्रतीक्षा करवाओगी?"

कमला ने अपने को उसके बाहु-बंधन से छुड़ाते और चेहरे पर घूँघट डालते हुए कहा,—"मेरे पिता से कहो! मैं भला क्या कह सकती हूँ? मैं तुम्हें अपना हृदय अर्पण कर चुकी हूं, यह बात वह नहीं जानते। इस लिये यदि तुम उनसे कहोगे, और यह बात उन्हें पसंद आएगी, तो शीघ्र ही हमारा विवाह हो जायगा।"

हरनाम,—"पर यदि वह अस्वीकार करें, तो क्या होगा?" यह कहते-कहते उसका गला भर आया।

कमला,—"तब राजासे कहो—वही तुम्हारी ओर से वकालत करेंगे।"

यह बात कमला ने इस लिये कही थी, चूंकि दिल्लीश्वर ने विचित्र रीति से अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के बादसे प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वे सदा सच्चे प्रेमियों की सहायता किया करेंगे।

हरनाम,—"अच्छी बात है। मैं तुम्हारे पिता पर अपनी इच्छा अवश्य प्रकट करूँगा। अब जाओ, मेरी प्यारी! मेरी हृदयेश्वरी! मेरी रानी—मेरी—"

बात पूरी भी न होने पाई थी कि एकाएक किसी प्रकारकी ध्वनि कान में पड़ते ही वे दोनों चौंक पड़े, और अलग हो गए। आगे का दरवाज़ा खुल गया, और दरबारे-आम से लौटते हुए राजा भरत दिखाई पड़े। उनकी दाहिनी तरफ़ एक गेरुआ रंग के कपड़े पहने हुए केश-हीन, पर लंबी चुटियावाले, वृद्ध पुरुष भी आते देख पड़े। बाईं तरफ़ दरबारके नामी-गरामी वकील थे, जो अधेड़ उम्रके होनेपर भी राज्य-भर में विद्या-वृद्ध माने जाते थे।

राजा भरत ने दूर ही से उस रत्नवाली संदूकची पर दृष्टि डालते हुए हरनाम से कहा,—"आप काशीके रहनेवाले और हमारे पारिवारिक गुरु हैं। आपके-से साधु इस देश में अत्यंत दुर्लभ हैं। इसी लिये हम लोगों ने अपनी चित्त-शांति के लिये आपको न्योता देकर बुलाया है।"

पर बात कुछ और ही थी। इन दिनों महारानी शोभनाको आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने की बड़ी अभिलाषा हो रही थी, इसी लिये महाराज ने अपने गुरु को बुलवा लिया है।

राजा फिर कहने लगे,—"आपकी विद्या का यश चारों दिशाओं में छाया हुआ है। हमें आशा है, कि आप किसी दिन इस रहस्य-पूर्ण रत्न का भी सारा भेद खोल डालेंगे। इस समय तो हम लोग भीतर जा रहे हैं। यदि और किसी समय आप इस रत्न की परीक्षा करने आएँ तो इन्हें परीक्षा करने देना।"

अब तक गुरुदेव बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि से उस माणिक की ओर देख रहे थे। देखते-देखते उनकी आँखें चमक उठीं। चेहरे पर प्रसन्नता के भाव स्पष्ट दिखाई देने लगे, और ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानों उन्हें वही वस्तु प्राप्त हो गई हो, जिसकी वह वर्षों से खोज में थे। घड़ी-भर के लिये उनका बुढ़ापा दूर हो गया—उनके सारे शरीर में नवयौवन की शक्ति भर गई।

यहीं से वकील साहब विदा कर दिए गए, क्योंकि उन्हें आगे जाने की मनाही थी। जाते समय वह भी एक लालच-भरी दृष्टि उस माणिक पर डालते गए। हरनाम यह बात ताड़ गया—उसकी आँखें झट वकील की आँखों से जा मिलीं। मानों आँखोंने ही आपस में सवाल-जवाब कर लिया। उसी समय से एक ने मानों दूसरे को चुनौती दे डाली।

इसके बाद वकील साहब धीरे-धीरे दरबारे-आम की ओर चले गए।

(२)

हरनाम के पिता यशवंतसिंह की ओर से दूतोंने कमला के पिता रामानंद के पास आकर कहा,—"महोदय! यशवंतसिंह"

आपको प्रणाम कहा है, और यह पूछा है, कि क्या आप अपनी कन्या का विवाह मेरे पुत्र के साथ करेंगे ? श्रीमन् ! जैसे आपकी कन्या पूर्णचंद्र के समान सुंदरी और काश्मीर-कुसुम के समान सुकोमलाङ्गी है, वैसे ही उनका पुत्र भी अर्जुन की तरह धीर और लक्ष्मणकी भाँति वीर है। इस संबंध के चिह्न-स्वरूप उन्होंने पाँच टोकरियाँ मिठाई की, सात तोले सोना, ग्यारह रत्ती हीरा और सूर्यकी तरह चमकनेवाला एक लाल भेजा है। अब कहिए, आपकी क्या राय है ?"

परन्तु रामानंद बिना अपनी प्यारी कन्या से पूछे कोई उत्तर न दे सके। वह जब रातको महारानी शोभना की सेवा से अवकाश पा, घर लौटी, तब रामानंद ने उससे पूछा,—"बेटी ! राजा के रत्न-रक्षक के पिता ने तुझे अपने पुत्र के लिये माँगा है। इसमें तेरी क्या राय है ? क्या तू उस रत्न-रक्षक की परिणीता पत्नी होना चाहती है ?"

यह प्रश्न सुनते ही उसके हृदय में हर्ष की अपार तरंगें उठने लगीं ; पर साथ ही एक प्रकार का अवर्णनीय आतंक भी पैदा हुए बिना न रहा। उसने रुक-रुककर पूछा,—"पिता ! तुम क्या मुझे उन्हें यशवंतसिंह का पुत्र समझकर नहीं सौंपोगे ? राजा का रत्न-रक्षक ही समझकर उन्हें हीन-दृष्टि से देखते रहोगे ?"

रामानंदने कहा,—"बेटी ! यदि वह राजा का रत्न-रक्षक न रहे तो अच्छा है, फिर तो मुझे कोई आपत्ति न रह जायगी ; क्योंकि वह सब प्रकार से सुयोग्य है।"

यह सुनते ही कमला का कलेजा ठंडा हो गया। उसने कहा, "बहुत खूब—भगवान् चाहेगा, तो वह रत्न ही खो जायगा, फिर रखवाली कौन करेगा ?"

यह कहते-कहते उसके मन में भय उत्पन्न हो गया, और वह बड़ी घबराहट के साथ बोल उठी,—"पिता ! तुम शीघ्र ही विवाह कर डालो। यदि तुम मुझे प्यार करते हो, तो इसमें विलंब न करो।"

अब के कमला के चेहरे पर स्याही छा गई और वह नन्हीं-सी बच्ची की तरह अपने पिता की गोद में बड़ी देर तक सिर छिपाए रह गई। उसकी आँखोंसे उस समय आँसू बह रहे थे।

अपने कपड़े भींगते देख, पिता ने उसका सिर ऊपर उठा, उसके आँसू पोंछ, उसका मुँह चूम, बड़े प्यार से कहा,—"प्यारी पुत्री ! बस एक सप्ताह के भीतर तू ऐसे हाथों में सौंप दी जायगी जो मेरे हाथों से कहीं मज़बूत हैं, और जो सदा तुझे सब प्रकार की आपद्-विपद् से बचाते रहेंगे।"

बूढ़े ने जो कुछ कहा था, वह ठीक ही कहा था—सचमुच एक सप्ताह के भीतर ही कमला की लग्न-तिथि नियत की गई। यह एक साधारण-सी बात है, कि जब राजदरबार के प्रिय व्यक्तियों के यहाँ विवाह आदि होनेवाला होता है, तब दो-तीन दिनों में ही नई इमारत तक तैयार हो जाती है और तैयारियों की तो बात ही क्या है ? हरनाम पर स्वयं राजा की विशेष कृपा होने के कारण उन्होंने निश्चय कर लिया कि वही काशीके गुरुजी इस

विवाह-कार्य के पुरोहित होंगे, और मैं ही इस नवीन दंपती के विवाह-पत्र पर हस्ताक्षर कर उसपर उसी जीवंत रत्न से मुहर कर दूंगा। उन्होंने और भी स्थिर किया, कि मेरा ही वकील इस विवाह का गवाह होगा, क्योंकि वकील राजा के प्रियतम पारिषदों में थे, और सभी राजकीय काग़ज़-पत्रोंमें गवाही की सही किया करते थे।

उधर वकील साहब ने जब यह बात सुनी, तब तो वह एक-बारगी हक्के-बक्के-से हो रहे। उन्हें क्या मालूम था कि उन्हींका कलेजा काढ़ने को कोई तैयार हुआ है? वह जिस रत्नको पानेकी अभिलाषा हृदय में लिए बैठे थे, उसे ही कोई और उनके जीते-जी लिए चला जाय, भला यह वह कब गवारा कर सकते थे? वह अपने एकांत कमरे में जाकर इस शुभ कार्य में विघ्न डालने की तरकीबें सोचने लगे। सोचते-सोचते उन्हें एक तरकीब सूझ पड़ी, और वह उसकी खुशी में उछलकर दो हाथ ऊंची छाती अकड़ाए अट्टहास्य करने लगे। उन्होंने हँसते ही हँसते कहा,—"बस अब क्या है? अब तो मैं इसी तरकीब से देवता और दानव, दोनों को अपनी मुट्ठीमें कर लूँगा।"

उसी दिन रात को राजमहल के बहिर्भाग के उस हिस्से से, जिसमे ख़ास राजगृह की रक्षा करनेवाले अफ़सर रहा करते थे, एक नक़ाबपोश चुपचाप बाहर निकला, और चौड़े राजपथ को छोड़, घुमघुमौआ रास्ते से जाता-जाता एक घनी झाड़ियों के बीच छिपे हुए मकान के बरामदे में आ पहुंचा। वहाँ पहुँचकर उसने

उस मकान के दरवाज़े की दाहिनी ओर कोई खटका-सा दबाया, जिसके दबाते ही दरवाज़ा आपसे आप खुल गया, और वह भीतर चला गया। उसके भीतर जाते ही दरवाज़ा फिर आपसे आप बंद हो गया। थोड़ी दूर जानेपर उसे फिर एक दरवाज़ा मिला, जिस-पर परदा पड़ा हुआ था।

न-जाने किसने पृथ्वीके अंदरसे सवाल किया,—"कौन है?" पर वह बिना कुछ कहे-सुने, परदा उठाकर, भीतर घुस पड़ा। वह कमरा एकदम अँधेरा था। खैर, किसी तरह टटोलते हुए उस कमरे को पारकर वह फिर एक दरवाज़ेके सामने पहुँचा। उसपर भी परदा पड़ा हुआ था।

फिर किसीने पूर्ववत् प्रश्न किया,—"कौन है?" इस बार भी वह चुपचाप बिना सींग-पूँछ हिलाए आगे बढ़ता गया। वह कमरा पार करनेपर उसे फिर एक कमरा मिला, जिसपर परदा पड़ा हुआ था। इसके परदे को हटाकर उसने कमरेकी कुंडी उतारी और—"दाहिना हाथ—" ये दो शब्द कहकर किवाड़ पीछे की ओर ठेल दिए। यदि वह इन दो शब्दों का उच्चारण न करता तो वह किवाड़ अरराकर उसीपर गिर पड़ते, और उसे बेतरह घायल कर डालते।

अस्तु, वह इस तरह तीसरे कमरे में घुसा ही था कि उसकी नाक में तरह-तरह की सुगंधित वस्तुओं की मधुर गंध प्रवेश करने लगी। एक चिराग़, जिसमें चमेली का तेल जल रहा था, उस कमरे में धीमी रोशनी फैला रहा था। कमरे के एकदम दूसरे

छोरपर, एक आसनपर एक अतिमानुषिक रूप-रंग एवं भाव-भंगी-वाला वृद्ध मनुष्य बैठा दिखाई दिया। उसके सामने ७ धूपदानों में सुगंधित द्रव्य जलाए जा रहे थे। किसीसे लाल रंग का धुआँ निकल रहा था, किसीसे पीले रंग का, तो किसीसे हरे रंग का।

आगंतुक को देखते ही उसने सिर उठाकर कहा,—"बस, जो कुछ करना हो, वह हफ्ते-भर के अंदर ही कर लो, नहीं तो फिर तुम्हारा किया कुछ भी न होगा।"

आगंतुक हँस पड़ा, और तब चिंताके साथ पूछ बैठा—"एक सप्ताह में तो उसका विवाह हो ही जायगा—फिर क्या होगा? तुम अपना काम कर चुके हो या नहीं?"

यह सुन, वह एक-एक करके उन धूपदानों की आग और धुएँ की परीक्षा करने लगा। परीक्षा कर लेने के बाद सिर हिलाकर कहने लगा,—"महात्माजी आ रहे हैं।"

आगंतुक चौंक पड़ा। कनखियों से उसकी ओर देखते हुए उस जादूगर ने कहा,—"तीन दिन हुए कि वह काशी से प्रयाण कर चुके हैं। आज के आठवें दिन यहाँ आ पहुँचेंगे; साधुओं की यात्रा भी तो बड़े धीरे-धीरे होती है?"

आगंतुक—"और यहाँ ठीक सातवें दिन विवाह है। हमें जो कुछ करना है, उसे उस दिन के पहले ही कर डालना होगा।"

यह कह, वह चुप हो गया। जादूगर भी कुछ न बोला। दोनों एक दूसरे को कड़ी निगाह से देखने लगे। देखते-ही-देखते उन्होंने अपने मन में कोई बात निश्चय कर ली; पर यह तो निस्संदेह था

कि इस बार दोनों के दिल में चोर बैठ गया; क्योंकि एक को दूसरे के प्रति कुछ-कुछ संदेह और अविश्वास होने लगा।

अब के आगंतुक ने खाँस-खाँसकर गला साफ़ करते हुए कहा,—"अबे जादूगर! यह तो बता कि तेरा असल मतलब क्या है? जब मैंने तेरे साथ मिलकर साजिश की, तभी अपनी आत्मा को कलंकित कर डाला। पर अब तू मुझे यह साफ़-साफ़ बतला दे कि कहीं तू भी विश्वासघातक तो नहीं है? अथवा सचमुच भूत-प्रेतोंपर प्रभुत्व रखनेवाला कोई जादूगर है?"

उस विचित्र मनुष्य ने अपने हाथ का चिमटा ज़मीन में रखते हुए कहा,—"मैं दोनों में से एक भी नहीं हूँ। यदि तुम मेरी विद्या को जादूगरी के नाम से पुकारना चाहते हो, तो भले ही पुकारो, पर मुझे विश्वासघातक कदापि नहीं कह सकते। मैं कनौज के राजा आनंदपाल का परम विश्वासी सेवक हूँ। उन्होंने दिल्ली का सत्यानाश करने की शपथ की है, और मैंने भी उन्हें यथाशक्ति सहायता देने का प्रण किया है। परंतु सोमनाथ भगवान् का यह वरदान है कि जिसके पास जीवंत-रत्न होगा, उसे कोई जीत नहीं सकता। इसी लिये मैं उस माणिक को उड़ा ले जाने के निमित्त यहाँ आया हूँ, और उसी कार्य-सिद्धि के हेतु मैंने एक विश्वास-घातक को अपना साथी बनाया है!"

आगंतुक दिल-ही-दिल में कट मरा, पर ऊपर से सूखी हँसी हँसता हुआ बोला,—"तब तो हम दोनों एक ही रास्तेपर हैं।"

जादूगर ने कहा,—"हाँ, हमारे उद्देश्य एक-से हैं। तुम्हें

रमणी-रत्न चाहिए और मुझे जीवंत-रत्न ; पर इन दोनोंही को प्राप्त करने में बड़ी-बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। जो लोग इन्हें पाने की चेष्टा करते हैं, उन्हें अपने प्राणों तक की बाज़ी लगा देनी पड़ती है ! अच्छी बात है, अब तुम जाओ। मैं थोड़ा सो रहूँ, जिसमें सवेरे ही अपने नियत कमरे में पहुँच जाऊँ। ऐसा करने से पहरेदार यही समझेंगे कि मैं नदी में स्नान करने गया हुआ था।"

(४)

राजा के प्रासाद के भीतर जो नज़रबाग़ था, उसीके सामने-वाला सुन्दर महल विवाह-कार्य सम्पन्न करने के लिये दिया गया था। स्वयं प्रियंवदा ही अपने देवर के ब्याह कीतैयारियाँ कर रही है।

अपनी आलीशान मसनद पर गावतकिये के सहारे लेटे हुए राजा भरत ने दुलहिन के बाप रामानंद और काशी से आए हुए गुरुदेव को सामने बैठाकर हरनाम और कमला के विवाह-पत्र पर हस्ताक्षर किया। उसके बाद वकील से वह क़ाग़ज़ माँग, सूर्य-वंशीय राजा भरत ने अपने कुल के प्रसिद्ध माणिक को मँगवाया, और उसीसे उस विवाह-पत्र पर स्वयं मुहर कर दी। इसके बाद वह माणिक हरनाम के हाथ में देते हुए राजा ने कहा,—"ईश्वर करे, तुम दोनों चिरसुखी हो। जो तुम्हारा भला चाहे, उसका भगवान् भी भला करे और जो तुम्हारी बुराई देखे, वह दुनिया-

भर से बुरा बने।" तदनंतर उन्होंने वह वैवाहिक पत्र वकील के हाथ में दे दिया, और उनसे भी उसपर हस्ताक्षर करने को कहा।

सब के पीछे उन्होंने अपने पुरोहित से कहा,—"गुरुदेव! जैसा कि आप पहले कह चुके हैं, तदनुसार अब आप भी इसपर सही कर दीजिये।"

गुरु जी उस समय गोमुखी में हाथ डाले चुपचाप माला जप रहे थे। राजा की बात सुनते ही उनका ध्यान मानों टूट गया, उन्होंने बायाँ हाथ बढ़ाकर वकील के हाथ से काग़ज़ ले लिया। इसके बाद हरनाम ने वह प्रसिद्ध माणिक उनके हाथों में मुहर करने के लिये सौंप दिया।

उस काग़ज़ पर दस्तख़त करने के लिये गुरुजी ने अपना दाहना हाथ गोमुखी से निकाला, और ख़ूब सिर झुकाकर सही करने लगे। साथ ही साथ वे बोल उठे,—"आशीर्वाद और अभिशाप एक ही पदार्थ हैं; क्योंकि दुष्टों का अभिशाप भी आशीर्वाद से कम नहीं।"

सब लोग गुरुदेव के इन भेद-भरे वाक्यों के विचार में लीन हो रहे। इतने में सही-मुहर करके उन्होंने वह पत्र रामानंद के हाथ में देते हुए कहा,—"भाई! इस पत्र को तब तक बड़ी हिफ़ाज़त से रखे रहना, जब तक तुम्हारे दौहित्र न उत्पन्न हो। जब वह लड़का पूरा जवान हो जाय तब उसे यह काग़ज़ दे देना, जिसमें वह अपनी माता का यथोचित सम्मान करे।" यह कह उन्होंने माणिक को संदूकची में रख दिया। इसके बाद वह फिर अपना

दाहना हाथ गोमुखी में ले गए, और स्थिर भाव से जाप करने लगे। परंतु यह किसीने नहीं देखा कि उनके दाहने हाथ में हाथ गोमुखी से बाहर निकालने या उसके भीतर ले जाने के समय कौन-सी चीज़ रखी हुई थी।

यह सब काम समाप्त हो जाने पर राजा ने हरनाम से कहा, "अब वह माणिक मुझे दे दो। अब मैं ही उसकी रक्षा करूँगा। मैंने एक महीने के लिये तुम्हें छुट्टी दे दी। इस एक महीने तक तुम सारी चिन्ताओं से मुक्त होकर सानंद वैवाहिक जीवन के सुख उपभोग करो, यही मेरी इच्छा है।"

यह कह, वह हरनाम से संदूकची लेकर अन्दरमहल में चले गए। बार-बार मनुष्य के हाथ में पड़ने और मुहर करने के लिये दबाए जाने से उस रत्न की चमक-दमक कुछ कम हो गई; पर इस ओर किसीने यही सोचकर विशेष ध्यान नहीं दिया, कि यह तो मुक्त वायु में रखने पर फिर पूर्ववत् हो ही जायगा। कारण, यह सभी जानते थे, कि यह माणिक जीवंत-रत्न है, और सब प्राणियों की भाँति हवा में श्वास लेता है।

उसी दिन रात को बड़ी धूमधाम से सैकड़ों हाथियों, घोड़ों और ऊँटों के जुलूस के साथ हरनाम की बरात निकली। उसकी बग़ल में काशी से आए हुए वे गुरुजी भी थे, जो आज की समस्त वैवाहिक क्रियाएँ संपन्न करानेवाले थे। नियत समय पर बरात रामानंद के घर पहुँची। उस देश की प्रथा के अनुसार एक बड़ी सुन्दर पालकी पर चढ़ कर कुमारी कमला द्वार पर लाई गई

और सब बड़े-बूढ़ों ने उसके सिर पर आशीर्वाद के फूल और अक्षत बरसाने आरंभ किए। उसी समय एकाएक बाजों की गड़गड़ाहट और मनुष्यों के आनंद-कोलाहल को दबाते हुए एक बड़ा भारी शोर मच गया। चारों ओरसे 'मारो-मारो' 'पकड़ो-पकड़ो' की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। उस भीड़-भाड़ और शोर-गुल के भीतर मौक़ा पाकर वे काशीवाले गुरु कुमारी कमला को आशीर्वाद देनेके बहाने उसे गोद में उठाकर ले भागे। इसीसे एकाएक इतना शोर बरपा हो गया था। गुरुदेव उस समय एक बड़े तेज़ घोड़े पर सवार थे, और भीड़ के अंदर भी इस ख़ूबी से उस ब्याही जानेवाली दुल्हन को घोड़े पर चढ़ाए हुए ले भागे, मानों उनमें नई जवानी का जोश भर आया हो।

हरनाम के तो क्षण-भर के लिये सारे होशोहवास उड़ गए। उसने अपने बड़े भाई चाँदसिंह को उस दुष्ट पुरोहित का पीछा करने के लिये ललकारा। सारे बराती उसी ओर दौड़ पड़े। सामने ही यमुना बहती दिखाई दी। तीर पर कहीं कोई नहीं दिखाई दिया। हाँ, उन्होंने पानी में एक लाश उतराती हुई देखी। वह लाश कमला की थी।

लोग बड़ी उदासी के साथ कमला की लाश को ले आए। अभी-अभी जो ब्याही जानेवाली थी, उसे जलाने की तैयारी होने लगी। हरनाम हत-बुद्धि हो रहा। उसकी लज्जा, संकोच, विवेक, विचार और कर्त्तव्याकर्त्तव्य-ज्ञान ने मानों उससे विदाई ले ली। वह सबका लाज-संकोच छोड़कर कमला के निर्जीव

मुखड़े को चूमने और उसका नाम ले-लेकर पुकारने लगा। पाठक ही उसके खेद, निर्वेद, मनस्ताप और दुःख का अनुमान कर लें, जिसकी आशा सातवें आसमान तक पहुंचते-न-पहुंचते गिरकर चकनाचूर हो गई हो ! वह बार-बार अपने भाग्य को कोसने और दैव को दोष देने लगा।

(५)

दूसरे दिन विदर्भ-भरमें दुःखका दरिया उमड़ पड़ा। जिसे देखो, वही उदास और चिंतित दिखलाई पड़ता। राजाके अत्यंत प्रिय अनुचर हरनाम की भावी पत्नी विवाह-वेदी के स्थान में चिता पर आरोहण करने जा रही है—यह देखकर सबके जी में दुःख का सोता-सा बह रहा है। श्मशान-भूमि में कमला की लाश लाकर लोगों ने उसे चंदन की चिता पर सुला दिया। उस समय तक कमला के शरीर पर दूल्हन के शृंगार शोभा दे रहे थे। उस दिन जितने लोग यमुना में नहाने आये, वे सभी यह दुर्दैव-प्रेरित दृश्य देख, आँसुओं की धार बहाने लगे।

इधर एक और गुल खिला। कानोंकान यह खबर सारे शहर में फैल गई, कि राजाका अत्यंत प्रिय और उनके कुल के यश, मान और स्थिति का आदि-कारण माणिक भी खो गया। लोग आपस में एक दूसरे से पूछने लगे, कि यह अद्भुत घटना कैसे हुई, जब कि स्वयं राजा ही उसकी रखवाली कर रहे थे ?

खबर देनेवाले ने उन कौतूहली लोगों से कहा,—"राजा ने यह

संदूक जिसमें माणिक की संदूकची रखी रहती थी, अपने खास कमरे में मँगवाकर रख दिया था। कल रात को जब बरात निकली थी, तब भी वह माणिक उसी संदूकची में रखा हुआ था। आधी रात को नींद खुलने पर उन्होंने देखा, कि उसमें से धुआं निकल रहा है।"

"धुआँ?"

"हाँ, धुआँ—हो सकता है, कि वह उस जीवंत मणि का साँस हो। सवेरे उठकर वे देखते हैं, कि माणिक तो लापता है।"

इतने में एक जुलाहे ने पूछा,—"और वह काशीवाले बाबाजी क्या हो गये?"

"वह आज सवेरे महल में आकर अपनी विचित्र रामकहानी सुनाने लगे। उन्होंने कहा, कि मैं एक सराय में अद्भुत रीतिसे रोक लिया गया, और बड़े भ्रम-जाल में पड़ा चाहता था।"

"हो सकता है, कि किसी वेश्या ने उन्हें फँसाने की चेष्टा की हो।"

"और उन पुरोहितजी का क्या हुआ, जो गुरु बने फिरते थे, और कल रातको उस ब्याही जानेवाली दुलहिया को ले भागे थे?"

"वह तो यमुना में डूब मरे। उनका कहीं पता न लगा।"

'पर वकील साहब तो और ही बात कहते हैं। वह कहते हैं कि वह पूरा बदमाश था, और मैं उसे अवश्य गिरफ्तार करूँगा। वह उसे पहले से ही सन्देह की दृष्टि से देखते थे। उनका ख़याल था कि वह राजा के किसी शत्रु का गुप्त दूत है।"

"उसी तरह, जिस तरह चाँदसिंह हमारे राजा के दूत होकर कन्नौज गए हुए थे।"

"वकील साहब और क्या कहते हैं?"

"वह कहते हैं कि वह मरा नहीं होगा, उसने पहले से ही नाव ठीक कर रखी होगी—उसीपर सवार होकर कहीं चला गया होगा। इसी लिये तो वकील साहब ने राजा से छुट्टी ली है, और उस चोर का पीछा करने के लिये जाना चाहते हैं।"

सुननेवालों में से एक बोल उठा,—"यह तो ख़ासी दिल्लगी हुई! चोर को चोर क्या ख़ाक पकड़ेगा?"

सब लोग उसीपर टूट पड़े और कहने लगे,—"अजी, यह क्या बकते हो? क्या तुम्हें और कोई पते की बात मालूम है?"

उसने कहा,—"नहीं, कुछ भी नहीं मालूम है।" यह कह, वह चुप हो गया; क्योंकि उसे मालूम था कि ये लोग उसकी बात का विश्वास न करेंगे। वह चाँद और हरनाम के पिता यशवंत सिंह के साथ बहुत दिनों तक काम कर चुका था; पर आजकल साधारण कृषक की भाँति यमुना के उस पार एक गाँव में शांति-पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा था। तीन वर्ष पहले इन्हीं वकील साहब ने उससे बड़ी भारी घूस की रक़म वसूल की थी, इसीसे वह जानता था कि वकील साहब बड़े भारी बेईमान हैं।

"अच्छा, मूर्खो! इस समय तो मैं जाता हूँ, पर रात को फिर तुमसे आकर मिलूँगा।" यह कह, वह आदमी चलता हो गया।

(६)

सारा दिन योंही बीत गया। हरनाम ने अपनी प्रियतमा की लाश नहीं जलाने दी। वह बार-बार उसे चूमता, स्पर्श करता, और रो-रोकर विलाप करने लगता। रात को उसने अहला-पहला कर अपनी प्यारी को चिता पर सुला ही दिया। इसी समय उसने कुछ लोगों को यह कहते सुना कि राजा का अत्यंत प्रिय जीवंत रत्न ग़ायब हो गया। सुनते ही वह घबरा उठा। "तो क्या मेरी जीवनमयी के साथ-साथ आज मेरी जीविका का भी अन्त हो गया?"—यह बात सोचते ही उसका कलेजा धक-से हो गया। उसके रोंगटे खड़े हो गए। उसने विचार किया, "अब मेरा जीवन व्यर्थ है। मुझे भी अपनी प्यारी के साथ ही चिता पर जल मरना चाहिए। पर स्त्री के साथ पुरुष का 'सती' होना तो बड़े आश्चर्य की बात होगी! जो सुनेगा, वही आश्चर्य करेगा। किया करे—इसकी हरनाम को कोई चिन्ता नहीं है। दूसरे, अपनी पत्नी के प्रति मेरा यह प्रगाढ़ प्रेम देख, सारी दुनिया के लोग सदैव मेरा स्मरण किया करेंगे, यह भी तो सम्भव है?"

आग सुलगाई गई; पर अभी तक चिता में अग्नि-संयोग नहीं किया गया। हरनाम हरघड़ी चिता में कूद पड़ने के लिये उता-वला होने लगा। वह चिता के पीछे एक झाड़ी में जाकर खड़ा हो गया। पुरोहितों ने मृता के कल्याणार्थ शास्त्रों के वचन पढ़ने शुरू किए। अब चिता में अग्नि-संयोग हुआ ही चाहता है। इसी समय लोग चिल्ला उठे,—"अरे यार! पानी बरसा है, या किसी

ने पानी डालकर ये लकड़ियाँ भिगो दी हैं ? ये तो बड़ी गीली हैं—सूखी लकड़ियाँ मँगवाओ ।"

यह सुन, हरनाम धीरे-धीरे झाड़ी से बाहर निकलने लगा। एक और छाया-मूर्त्ति उसके पीछे-पीछे झाड़ी से बाहर निकली। उसके हाथ में तेज़ धारवाला छुरा चमक रहा था। चिता में अग्नि-संयोग होते ही हरनाम पलक मारते वहाँ आ पहुँचा। दूसरी मूर्त्ति भी उसी समय वहाँ आ पहुँची। हरनाम ने आहट पा, पीछे घूमकर उसे देखा और देखते ही कह उठा,—"दुष्ट, विश्वास-घातक कहीं का !"

"अबे हट जा, मूर्ख कहीं का !"

उस समय भी हरनाम के हाथ में तलवार थी ; क्योंकि वह अपने पूरे साजसामान के साथ चिता में कूद पड़ने को तैयार था। फिर क्या था ? दोनों के हथियार झनझना उठे। चिता के पास ही दोनों का विकट युद्ध होने लगा। पहले तो अपनी प्रियतमा के वियोग के कारण दुःखितांतःकरण हरनाम कुछ दब-सा गया ; पर पीछे उसकी शूरता नस-नस में फड़क उठी। उसने क्रोध में आकर अपनी तलवार उस दुष्ट के कलेजे के पार कर दी। इसी समय एक और मनुष्य उसी झाड़ी से निकला, और बड़ी भारी भुजाली ताने उसके सामने खड़ा हो गया। दूसरे ही क्षण एक और मनुष्य सिर्फ़ लँगोटी पहने और बर्छा लिए वहाँ चला आया। अब तो हरनाम बड़े फेर में पड़ा ; क्योंकि उस समय वह वहाँ अकेला था। इसका कारण यह था, कि उस देश की प्रथा के

अनुसार चिता में अग्नि-संयोग कर सब लोग दूर हट गए थे। अकेला हरनाम अपने शत्रुओं को बराबर छकाता रहा और उसने एक-एक करके सबको घायल भी कर डाला। अब तो जो शव-यात्री इधर-उधर चले गए थे, वे भी वहाँ आ पहुँचे और हरनाम की वीरता की बड़ाई करते हुए स्थिति की विचित्रता पर आश्चर्य प्रकट करने लगे।

इसी समय चाँदसिंह दौड़ा हुआ वहाँ आ पहुँचा, और कमला की लाश को चिता पर से उठाकर ज़मीन पर सुलाता हुआ बोला,—"भाइयो! शांत हो। देखो—मैं तुम्हें कैसा विचित्र तमाशा दिखाता हूँ!"

यह कह, उसने कमला का मुँह फाड़कर उसके भीतर से न-जाने कौन-सी चमकती हुई चीज़ निकाल ली। देखते ही हरनाम चिल्ला उठा,—"अरे! यह तो वही जीवंत रत्न है!"

चाँदसिंह ने कहा,—"हाँ, वही है और इसी लिये यह बेचारी जीते-जी जल जाया चाहती थी।"

यह कह, चाँदसिंह ने उसकी नाक में कोई दवा सुँघाई। दवा सूँघते ही कमला की साँस चलने लगी।

थोड़ी देर बाद कमला की देह एक बार हिली—उसने आँखें खोल दीं, और बहुत ही धीमे स्वर में बोल उठी,—"मैं तो अब मरती हूँ।"

यह सुनते ही आँखों में आँसू भरे हुए हरनाम ने कहा,—"नहीं, नहीं, मेरी प्यारी! तुम मरकर जी गई हो—अब कोई भय नहीं है।"

अपने हृदयेश्वर की मूर्त्ति आँखों-तले आते ही कमला के क्षीण प्राणों में ऐसी आनन्द की बिजली दौड़ गई कि वह फिर आँखें बंद कर बेहोश हो गई। हरनाम ने सोचा, कि शायद वह अब की बार सचमुच मर गई, इसी लिये वह आर्त्तस्वर से चिल्ला उठा,—"मेरी प्यारी कमला! तुम अब मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो?"

इसी समय चांदसिंह फिर अपने भाई की सहायता के लिये आगे बढ़ा, और बोला,—"भाई! मैं एक बड़ी ही बढ़िया चीज़ उस शैतान के बच्चे से छीन लाया हूँ। यह एक बार गड़े मुर्दे में भी जान पैदा कर देने की शक्ति रखती है।" यह कह उसने एक छोटी-सी शीशी कमला की नाक के पास रखी।

एक बार कमला का सारा शरीर काँप उठा—फिर उसकी आँखें खुल गईं, और उसकी बेहोशी जाती रही। इस बार उसे आदि से लेकर अब तक की कुल घटनाएँ याद आने लगीं। अपने हृदय-सर्वस्व को अपने पास खड़ा देखकर उसने सिसकते हुए उसके गले में बाँह डाल दी।

इसी समय एक ओर से एक आदमी को पकड़े हुए एक मनुष्य आया, और बोला,—"अब इस कनौजी दूतको क्या दण्ड देना चाहिये, जो गुरुका जामा पहनकर इतनी बड़ी शैतानी कर गुज़रा?"

चाँदसिंह ने कहा,—"अब और क्यों दण्ड देना? इसके दोनों हाथ तो सदा के लिये बेकार ही हो गए। बस इसे यहाँ से हटा कर कहीं और ले जाओ, नहीं तो उत्तेजित जनता अभी इसके टुकड़े-टुकड़े कर डालेगी।"

यह सुन, उस आदमी ने उस नक़ली गुरु को जङ्गल में ले जा-कर छोड़ दिया। वकील की लाश वहीं चिता में जला दी गई। इसके बाद सब लोग हर्ष के साथ अपने-अपने घर चले गए। क्षण-भर में कमला के मरकर जी उठने का हाल सारे नगर में फैल गया। राजा ने भी अपना खोया हुआ माणिक पाकर बड़ा आनंद मनाया, और इस ख़ुशी में अपने नौकरों और अनुचरों को ख़ूब इनाम दिया। कहना व्यर्थ है कि थोड़े ही दिन बाद कमला की शादी हरनाम के साथ हो गई।

इसी समय घड़ियाल ने आधीरात का घंटा बजाया। कहानी सुनानेवाले ने राजा से विदा माँगी।

राजा ने कहा,—"अच्छा, यह तो कहो, जब उस कनौजी गुप्त-चर ने विवाह-पत्र पर दस्तख़त करते ही समय वह माणिक चुरा लिया और उसकी जगह नक़ली माणिक रख दिया था, तब वह उसी समय भाग क्यों नहीं गया?"

कहानीवाले ने कहा,—"चूँकि उसे वकील को कमला की प्राप्ति में सहायता देनी थी। यदि वह उसी समय भाग जाता तो वकील उसे तत्काल संदेह पर गिरफ़्तार करवाता, और उसको बड़ी कड़ी सज़ा मिलती। इसी लिये उसने ठहरना ही उचित समझा। उस माणिक में एक और भी गुण था। उसे मुँह में डालते ही मनुष्य ऐसा बेहोश हो जाता, कि लोग उसे मरा ही हुआ समझने लगते। उसने सोचा था, कि जब सब लोग कमला को मृत समझकर चिता पर जलाने के लिये रखेंगे, तब मैं अपने साथियों

समेत वहाँ पहुँचकर उसे उठा ले आऊँगा, और उसके मुँह से जीवंत-रत्न निकालकर अपने मालिक के हाथ में दे आऊँगा। उसके पास एक संजीवनी औषधि की शीशी भी थी, जिसके बल पर वह कैसी भी बेहोशी को बातें करते दूर कर दे सकता था।

"चाँदसिंह को इन सब बातों का पता था। जिस समय उसने सुना कि माणिक धुआँ बनकर उड़ गया है, उसी समय उसे इस बात का निश्चय हो गया कि कोई बड़ा भारी चक्र चल रहा है। उसने राजा की आज्ञा प्राप्त कर उस लोहे के संदूक की भली भाँति परीक्षा की, और देखा कि रत्न के स्थान में राख की ढेरी रखी है। बस वह सारी बातें ताड़ गया, और झटपट श्मशान की ओर दौड़ चला, जिसमें कमला की लाश उसके पहुँचने के पूर्व ही जला न दी जाय। चाँद थोड़ी ही दूर गया होगा, कि उसे वही किसान मिल गया, जो उसके पिता के साथ बहुत दिनों तक काम कर चुका था, और अब कृषि-कार्य करता हुआ स्वतंत्र जीवन बिता रहा था। उसने कहा, कि वकील उस बनावटी गुरु को ढूँढने नहीं, बल्कि श्मशान की ओर गया हुआ है। अब तो चाँदसिंह समझ गया, कि यह सब इसी पाजी वकील की करतूत है। इसके बाद उसने ठीक समय पर पहुँचकर किस प्रकार सारी बिगड़ी बातें बना डालीं, यह आप सुन ही चुके हैं। अच्छा, तो अब आज की रात के लिये मैं विदा होता हूं। कल आपको इससे भी विचित्र कहानी सुनाऊँगा, जिसमें प्रेमी ने अपनी प्रेमिका के लिये सहस्रों प्रकार के कष्ट उठाए हैं।"

बंदिनी ।

(१)

चौथी रात को कहानीवाले ने यह कथा सुनाई;—

हे महिमामय नरेश ! भाग्य का खेल बड़ा विचित्र होता है। मनुष्य जब जिस वस्तु की इच्छा भी नहीं करता या जिसका सपना भी नहीं देखता, तभी वह उसे अनायास मिल जाती है। इसके विपरीत, जब वह किसी वस्तु की अभिलाषा करता है, तब वह उससे दूर-दूर भागी फिरती है। ऐसी दशा में भाग्यवान् वही है, जो अपने हृदय को सदैव सब प्रकार के विधि-विधान के लिये प्रस्तुत रखे और अपने कर्तव्य का पालन करने को सदा-सर्वदा तैयार रहते हुए अपने मन में संदेह और कुभावना को स्थान न दे; कठिन से कठिन अवसर पर भी अपने जीवन को हथेली में लिए फिरे और अपने निश्चित उद्देश्य तक पहुँचने के लिये अपना सर्वस्व दाँवपर लगा दे। यही बात कमला के सगे भाई गुरुदत्त के संबंध में भी सच उतरी थी।

जिस समय उसकी बहन कमला का विवाह हुआ था, उसके बहुत पहले ही वह दिल्ली-नरेश की ओर से दूत बनकर काश्मीर के राजा के दरबार में गया हुआ था। इसी लिये वह इस विवाहोत्सव में सम्मिलित न हो सका, और उस समय के युद्ध-विग्रह में

भगा न ले सका। परन्तु जिस समय उसने उन सब घटनाओं की उड़ती हुई ख़बर सुनी, उसी समय वह उकताकर काश्मीर से दिल्ली की ओर रवाना हो गया।

दिल्ली पहुँचकर वह एक महीने तक अपनी बहन और बहनोई के पास रहा। इसके बाद उसने अपनी बहन से विदा माँगते हुए कहा,—"प्यारी बहन! अब मैं जाता हूँ; क्योंकि मुझे बहुत-से काम करने हैं।"

कमला बोली,—"क्या मेरे पास रहते-रहते तुम्हारा जी ऊब गया? एक महीना तो और रह जाओ।" पर जब उस के भाई ने न माना, तब उसने अपने स्वामी से कहा,—"स्वामी! कृपा कर मेरे भाई को एक महीने तक और यहाँ रोक रखो।"

यह सुन, हरनाम ने भी गुरुदत्त से कुछ दिन और ठहर जाने के लिये बड़ा आग्रह किया। अंत में बहुत कहने-सुनने पर वह एक महीने तक तो नहीं; पर एक सप्ताह और ठहरने के लिये राज़ी हो गया। पर वह बेचारा यह नहीं जानता था कि उसके भाग्य में इतने ही दिनों के भीतर क्या-क्या परिवर्त्तन घटनेवाले हैं; क्योंकि इन दिनों राजधानी प्रेम, विभिन्नता औरविपद् का अखाड़ा-सा बन रही थी।

उसी दिन शाम को वह अपने घोड़े पर सवार हो, दिल्ली के बाज़ारों में घूमता-फिरता एक सुनसान रास्ते में आ पड़ा, जिसके दोनों तरफ़ बड़े-बड़े वृक्षों की पंक्तियाँ लगी थीं। जाते-जाते एक जगह उसे रास्ता बदलना पड़ा,और थोड़ी ही दूरपर उसे पवित्र जल-

वाली यमुना बहती दिखाई दी। सामने ही दुर्गा का मंदिर था, जो वहाँ का एक बड़ा ही प्रसिद्ध देवस्थान था। वहाँ बड़े घरानों से लेकर साधारण कृषकों के घर की स्त्रियाँ तक अपनी मन-स्कामना की सिद्धि के निमित्त देवी की पूजा करने के लिये आया करती थीं। उस मंदिर की सीढ़ियाँ ठेठ यमुना की धारा तक चली गई थीं। सीढ़ियों में तरह-तरह के सुंदर पत्थर लगे थे। मंदिर के पीछे एक छोटा-सा आँगन था, जिसके बाद ही असली संगमर्मर का एक विशाल भवन बना हुआ था। उस भवन से लेकर मंदिर तक एक पतला-सा बंद रास्ता बना हुआ था, जिसमें वहाँ से मंदिर तक परदानशीन औरतों के आने-जाने में सुभीता हो। परंतु उस भवन में कौन रहता है, यह कोई नहीं जानता था। ऐसे आलीशान मकान में रहनेवालों के यहाँ तो सैकड़ों दास-दासी रहने चाहिए; पर वहाँ तो कोई आदमी का पुतला भी नहीं नज़र आता था—उस मकान के सभी द्वार और खिड़कियाँ सदा बंद रहती थीं।

इस स्थान की विचित्र नीरवता पर मन-ही-मन विचार करते हुए, वह बेचारा स्वप्नाविष्ट व्यक्ति की भाँति नगर की सीमा के बिलकुल बाहर चला गया। जब वह वहाँ से लौटने लगा, तब बड़ी रात हो गई थी। सभी जगह लोग चाँदनी रात में मीठी नींद का मज़ा ले रहे थे। एक बार फिर उसका ध्यान उसी मंदिर की ओर आकृष्ट हो गया, और वह उसके सामनेवाले मैदान में चला आया। वहाँ पहुँचते ही उसने ज्यों ही ऊपर की ओर सिर

उठाया, त्यों ही कोई चीज़ उसे दिखाई दी। उसे देखते ही वह चौंक पड़ा। उसका कलेजा धड़कने लगा, और उसकी सारी देह काँप उठी। उसने सोचा,—"यह क्या ? मैं क्या स्वप्न देख रहा हूँ, या कल्पना के राज्य में विचरण कर रहा हूँ ?"

जो मूर्त्ति उसे दिखाई दी थी, वह एक अलौकिक सुंदरी की मूर्त्ति थी। उसने सोचा कि यह अवश्य ही दुर्गा की सहचरियों में से एक है, अन्यथा ऐसा त्रिलोक-दुर्लभ लावण्य भला किस मानवी को नसीब हो सकता है ? वह मूर्त्ति उस मंदिर के सामनेवाले संगमर्मर के बने विशाल भवन के ऊपरवाले खण्ड के एक कमरे की खिड़की के पास खड़ी थी, और चेहरे का घूँघट हटाए, निश्चिन्त मन से, सामने के प्राकृतिक दृश्यों की सुंदरता निरख रही थी। उसे यह नहीं मालूम था कि उसे कोई इस तरह खिड़की के पास खड़ी देख रहा है।

एक ही क्षण बाद उसकी दृष्टि भी गुरुदत्त पर जा पड़ी। उसे देखते ही वह सुंदरी न-जाने क्यों ठंडी आहें भरने लगी। यह बात गुरुदत्त ने ताड़ ली, और उसे ऐसा मालूम पड़ा, मानों किसी ने उसके कलेजे में नश्तर चुभो दिया ! सुंदरी की आँखें स्थिर भाव से गुरुदत्त की ओर देखती रहीं, उसका कलेजा धौंकनी की तरह ऊपर-नीचे आने-जाने लगा, और होंठ कुछ कहने के लिये फड़क उठे ; पर कह न सके। कारण, उसने गुरुदत्त की आँखों में केवल वही भाव नहीं देखा, जो एक प्रेम-मुग्ध युवा की आँखों में अकसर देखा जाता है।
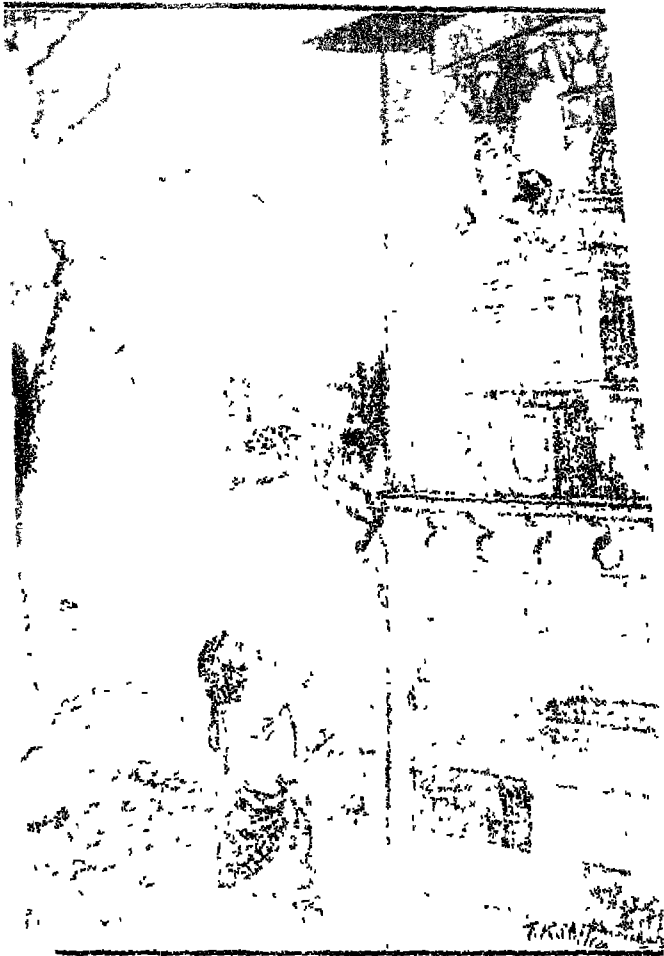
गुरुदत्त और सुन्दरी।

"वह सुन्दरी सामनेवाले संगमर्मरके बने विशाल भवनके एक कमरेकी खिड़कीके पास खड़ी थी।"

—पृष्ठ ८२।

इसी समय पीछे से किसी का पद-शब्द सुनकर वह चौंककर की ओर देखने लगी। एकाएक उसकी कलाई में बँधी ई कोई चीज़ नीचे गिर पड़ी, और वह खिड़की पर परदा डालकर न-जाने किधर अदृश्य हो गई।

गुरुदत्त ने अपने घोड़े से नीचे उतरकर वह चीज़, जो उस सुंदरी की कलाई से खिसककर नीचे गिर पड़ी थी, लपककर उठा ली। उसने देखा, कि यह तो सोने का कड़ा है, जिसमें हीरे, मोती और पुखराज जड़े हुए हैं। पहले तो उसने विचार किया कि उस मकान के सदर दरवाज़े से भीतर जाकर उस सुंदरी को उसका आभूषण दे आए; पर पीछे यह सोचकर रुक गया कि रात बहुत बीत गई है, और ऐसे समय किसीके घर के भीतर जाना अच्छा नहीं है। यही विचारकर वह उस सुंदरी के पुनः वहाँ आने की प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु आधी रात बीत जाने पर भी उसकी आशा सफल नहीं हुई। वह अनुपम माधुर्य-मयी मूर्त्ति फिर उसे न दिखाई दी। अतएव वह निराश हो लौट पड़ा।

उस दिन के बाद वह नित्य अपने घोड़े को घर ही छोड़कर धीमे पैरों चलता हुआ वहीं आकर उस सुंदरी के दर्शन की प्रतीक्षा में खड़ा रहने लगा; पर तीन रातों तक उसे लगातार निराश ही होना पड़ा। तब तो वह अपनी मूर्खता पर पछताने लगा, और यही सोचकर वहाँ आना छोड़ दिया कि अब शायद वह मेरे आने का समय और ठहरने का स्थान जान गई है, इसी लिये मेरे आते

ही छिप जाती है। चौथे दिन वह दूसरी तरफ़ से उस मंदिर के पास आया, और दीवार में एक स्थान पर एक मोखा देख, उसीकी राह भीतर झाँकने लगा।

रात बहुत बीत गई थी—चंद्रमा अस्त हुआ चाहता था। चारों तरफ़ सन्नाटे का आलम था। गुरुदत्त को सिवा अपनी लंबी साँसों के और किसी चीज़ की आवाज़ नहीं सुनाई देती थी। कुछ ही देर बाद उसको एक प्रकार का विचित्र शब्द हवा में होता हुआ सुनाई दिया। सुनते ही वह भय के मारे काँप गया। कुछ ही क्षण बाद उसे किसीके धीरे-धीरे सिसकने की आवाज़ सुनाई दी। वह समझ गया कि यह आवाज़ मंदिर के भीतर से आ रही है। तदनंतर उसे किसीके धीरे से घंटा बजाने और स्तुति करने का शब्द भी स्पष्ट सुनाई दिया। उसने सुना, मानों कोई दुखिया बड़ी निराशा के साथ कह रही है,—"माँ! क्या तुम अब भी मेरी प्रार्थना नहीं सुनोगी?"

यह सुनते ही वह उस मोखे में आँख लगाकर देखने लगा। उसने देखा, कि एक दुबली-पतली स्त्री, शाल ओढ़े, प्रतिमा के सामने खड़ी है, और अपनी प्रार्थना समाप्त कर, छत से लटकते हुए घंटे को बजाने के लिये ऊपर की ओर हाथ बढ़ा रही है। घंटे तक उसका हाथ न पहुँचा। वह केवल थोड़ा-सा ही उसे छू सका, जिससे घंटा थोड़ा हिला, और धीरे से बज गया। उसने फिर कहा,—"मैया! जागो, इस दुखिया का विनती सुनो।"—परंतु माता शायद उस समय गाढ़ी निद्रा में थीं, इसी लिये वे उसकी प्रार्थना सुनने के लिये न उठीं।

अब के सुन्दरी ने अपने दोनों हाथ जोड़कर कहा—"माता! मेरी सहायता करो। बस, आज की रात यदि तुम सहायता न करोगी, तो मैं कल कहीं की न रहूँगी। तुम्हारे सिवा मेरा कोई रक्षक नहीं है। वह अपरिचित भी अब मेरी सहायता को नहीं आता। मैया! मेरा दुःख देखकर कुछ भी तो पसीजो।"

यह कहते-कहते वह रो पड़ी—उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। इसी समय गुरुदत्त ने देखा कि उसके एक हाथ का कड़ा ग़ायब है। सुंदरी का वह आर्त्तस्वर से उच्चारण किया हुआ प्रार्थना-वाक्य गुरुदत्त के कलेजे में चुभ गया।

उसने सोचा,—"निश्चय ही यह सुन्दरी इस समय घोर संकट में है। मैं बड़ा मूर्ख था, जो उस दिन इसके कड़ा नीचे गिराते ही यह बात न समझ गया। क्षत्रियों के यहाँ यह प्रथा प्राचीनकाल से प्रचलित है कि क्षत्रिय-रमणियाँ विपत्ति में पड़ने पर अपने जाति-भाइयों के पास इसी प्रकार की निशानियाँ भेजा करती हैं। चूँकि मुझ पर-पुरुष से यह बात नहीं कर सकती थी, इसी लिये इसने उस दिन अपना कड़ा जान-बूझकर नीचे डाल दिया था। शायद आज ही इसके लिये क़त्ल की रात है, इसी लिये यह इस प्रकार धीरज छोड़कर दुर्गा को गुहरा रही है।"

इसी समय मंदिर के भीतर जो रोशनी जल रही थी, वह ज़ोर से भभक उठी। उस उज्ज्वल प्रकाश में गुरुदत्त ने देखा कि सुंदरी के सामनेवाले खम्भे की आड़ से एक छाया-मूर्त्ति प्रकट हुई। उसके पीछे एक और मूर्त्ति बाहर निकली। फिर तीसरी मूर्त्ति

आई। उन्हें देखते ही सुंदरी मूर्च्छित हो गिर पड़ी। गुरुदत्त भी यह दृश्य देख दहल उठा। वह अपने पैरों को जमाए हुए न रह सका—वह उसी क्षण नीचे आ रहा।

इसके बाद वह उसी अँधेरे में टटोलता हुआ, उस मकान के अंदर घुसने को राह खोजने लगा; पर कहीं राह न मिली। तब वह निराश हो, वहाँ से चलकर नदी की ओर जो मुँडेरा निकला था उसीपर चढ़ने की चेष्टा करने लगा; पर न चढ़ सका, और छपाक से यमुना-जल में गिर पड़ा। इसी समय उसने देखा कि कोई नाव बड़ी तेज़ी से चली जा रही है, और उसपर तीन आदमी एक बड़ा भारी गट्ठर लिए चले जा रहे हैं। अकस्मात् उसके कानों में किसी मनुष्य के धीरे से कराहने की आवाज़ सुनाई दी। यह सुनते ही वह प्राणों का मोह छोड़कर बड़ी तेज़ी से तैरता हुआ उस नाव का पीछा करने लगा। पर उसे उसके पास पहुँचना असंभव दीख पड़ने लगा; क्योंकि नाव बड़ी ही तेज़ी से चली जा रही थी। वह तैरता-तैरता हाँपने लगा। इसी समय उसे एक छोटी-सी डोंगी जाती दिखाई दी; बस उसने नाव का पीछा करना छोड़, उसी डोंगी का पीछा करना शुरू किया, और उसके पास पहुँचकर डोंगीवाले से कहा,—"भाई! ज़रा डोंगी खड़ी करो, मुझे ऊपर आने दो, और उस आगेवाली नाव के पीछे-पीछे ले चलो। मुँह-माँगा इनाम पाओगे, नहीं तो मैं अभी यह तलवार तुम्हारे कलेजे के पार कर दूँगा।" यह कह उसने अपनी तलवार डोंगीवाले को दिखाई।

भय और लोभ दोनों एक ही साथ डोंगी के माँझी पर हमला किया। उसने झट गुरुदत्त की बात मान ली। डोंगी पर पहुँच कर गुरुदत्त ने एक डाँड़ अपने हाथ में लेकर डोंगी को तेज़ी के साथ उस नाव के पीछे लगाया। धारा अनुकूल पाकर डोंगी हवा से बातें करती हुई उस नाव के पीछे चल पड़ी। अब के डोंगीवाले ने कहा,—"भैया ! देखो, अब वह नाव थोड़े ही फ़ासले पर रह गई है, इस लिये ज़ोर से दोनों डाँड़ चलाने का कोई काम नहीं है। आप वह डाँड़ रख दीजिए। हवा अनुकूल है, डोंगी बहुत जल्द उसके पास पहुँच जायगी।"

गुरुदत्त को उसकी बात का विश्वास हो गया, और उसने डाँड़ नीचे रख दिया। काम छोड़ते ही थके हुए गुरुदत्त को नींद आ गई। फिर क्या था? डोंगीवाला अपने मन से डोंगी खेने लगा और धीरे-धीरे नावके पास जा पहुँचा। वहाँ पानी बिलकुल नहीं था। केवल रेत-ही-रेत थी। नाव भी लंगर डाले पड़ी थी।

अब के नाव पर से दो-तीन आदमी उस डोंगी पर चले आए, और जैसे ही गुरुदत्त की नींद खुली और उसने उठने की चेष्टा की, वैसे ही उन्होंने उसे पकड़कर नीचे पानी में डाल दिया। उन सबने जहाँ गुरुदत्त को पानी में गिराया था, वहाँ अगम-अथाह जल था। गुरुदत्त डूब गया!

(२)

तरुण अरुण की तीखी किरणें मुँह पर पड़ते ही गुरुदत्त की नींद खुल गई, और उसने अपनेको एक गुफा में पड़ा पाया,

जिसके ऊपर एक बड़े भारी पीपल के पेड़ की छाया पड़ रही थी। वह उस गुफा में तृणों की सेज पर सोया हुआ था। धीरे-धीरे चेतना उत्पन्न होने लगी। पहले उसके कानों की चेतना जागी। वह कान लगाकर सुनने लगा कि कहीं से कोई आवाज़ आ रही है या नहीं। इसके बाद जब आँखों में चेतना उत्पन्न हुई, तब उसने आँखें ऊपर कर देखा कि उस गुफा के बाहर धुनी जल रही है। उस जलती हुई धुनी के पास एक मनुष्य सिर झुकाए बैठा हुआ था। गुरुदत्त ने सोचा,—"तो क्या मैं दुश्मनों के हाथ में पड़ गया हूँ?" यही सोचकर उसने उस अपरिचित मनुष्य को पहचानने के लिये फिर उसकी ओर देखा, पर न-जाने वह इसके दिल की क्योंकर ताड़ गया कि उसने झट मुँह फेर लिया, और गुरुदत्त की ओर पीठ कर दी। गुरुदत्त उसकी सूरत न देख सका। हाँ, इतना ज़रूर जान सका कि उसकी पगड़ी ख़ाकी रंग की, कुर्त्ता सफ़ेद रंग का और दाढ़ी छाती तक लटकती हुई है।

इसी समय उस मनुष्य ने गरजकर कहा,—"बस, ज़रा भी हिलना-डोलना नहीं।"

गुरुदत्त यह बात सुनते ही चौंक पड़ा। उसी मनुष्य ने फिर कहा,—"थोड़ी देर और ठहर जाओ, बेटा! धीरज धरो।"

यह 'बेटा' सम्बोधन सुनकर गुरुदत्त के जी में जी आ गया। उसने सोचा, यह तो मेरा कोई गुप्त मित्र मालूम होता है—शत्रु नहीं है।

थोड़ी देर बाद वह मनुष्य कुछ पके हुए आम और एक तरबूज़

लिए हुए गुरुदत्त के पास आया, और बोला,—"मेरे हाथ की पकाई हुई रसोई तुम नहीं खा सकते, क्योंकि मैं तुमसे जाति में नीचा हूँ। इसीसे मैं माता पृथ्वी के ये स्वाभाविक भोजन तुम्हारे लिये ले आया हूँ; क्योंकि जो वस्तु पृथ्वी से उत्पन्न होती है, वह परम पवित्र होती है। लो उठो—उठकर इन्हें खा लो। क्या तुमसे उठा भी नहीं जाता?"

बड़ी मुश्किल से गुरुदत्त उस तृण-शय्या पर उठ बैठा। इस समय भी उसके सिर में थोड़ा बहुत चक्कर आ रहा था। इसके सिवा उसकी तबियत बिलकुल अच्छी हो गई थी। उसकी पगड़ी ने भी उसकी बड़ी रक्षा की थी, नहीं तो उसे न-जाने कितनी चोट लगती। उसने उस अपरिचित मनुष्य के कहे अनुसार फल खाए, और अपरिचित ने अपनी पकाई रसोई आप खाई।

खा-पीकर निश्चिन्त होने पर गुरुदत्त ने कहा,—"कल रात को कुछ बदमाश एक भले घर की कुँआरी लड़की को उड़ाए लिए जा थे—मैं उन्हींका पीछा कर रहा था।"

अपरिचित,—"यह मुझे मालूम है।"

गुरुदत्त,—"सो कैसे?"

अपरिचित,—"रात-भर तुम बेचैनी के मारे तड़पते, और बेहोशी में अंड-बंड बक रहे थे। उसी समय तुमने यह भेद खोल दिया था।"

गुरु०,—"अच्छा, तो पिताजी! अब आपका कर्त्तव्य यही है कि उस कुमारी कन्या की रक्षा करने में मेरे सहायक हूजिए।"

सुन, अपरिचित थोड़ी देर के लिये चुप हो रहा। इसके बाद उसने कहा,—"लेकिन तुम्हारी सफलता की आशा कम है। मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूँ कि तुम्हें झूठी आशाएँ देकर बहलाऊँ।"

गुरु०,—"नहीं, पिताजी! यद्यपि भाग्य का लेख कभी मिटता नहीं है, तथापि अपनी शक्ति-भर उद्योग करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।"

अब के बूढ़े ने अपना सिर झुका दिया, और मन-ही-मन अपने कर्त्तव्य पर विचार करने लगा। सोचते-सोचते उसने भी उस कुमारी की रक्षा करने का संकल्प कर लिया। इसके बाद उसने युवक की वह तलवार, जो कल रात को उसके पास थी, लाकर उसे दे दी, और अपने लिये एक दूसरी तलवार, एक लंबा बर्छा, और एक गैंडे की खाल की बनी हुई मज़बूत ढाल निकाली।

इस प्रकार हथियारों से लैस होकर वे दोनों ही चल पड़े, और लगातार कई घंटे यात्रा करते रहे। गुरुदत्त को उधर के राह-घाट नहीं मालूम थे। बूढ़ा ही उसका मार्ग-प्रदर्शक था। जाते-जाते वह बूढ़ा रास्ते के सभी गड्ढों, नालों, झाड़ियों और सघन कुंजों की भली भाँति परीक्षा करता जाता था।

जाते-जाते बूढ़े ने एक बड़े भारी नाले के पास पहुँचकर कहा,—"तीन-चार दिन पहले इसी नाले मे एक नीलगाय बोल रही थी। उसकी आवाज़ सुन, कई चीते झाड़ियों में से निकल आए और बड़ी दूर तक उसे खदेड़ ले गए। अगर तुम इस समय

इतनी जल्दी में न होते, तो मैं ले चलकर तुम्हें दिखलाता कि उन सबने उसे कहाँ ले आकर मारा, और उसका मांस खाया था।"

गुरुदत्त ने कहा,—"पिताजी! यह हँसिए का व्याह और खुरपे का गीत अच्छा नहीं लगता। इस वक्त हमलोग जिस मतलब से निकले हैं, उसीकी बात कीजिए।"

अपरिचित ने कहा,—"पुत्र! मैं तुम्हारे मतलब की ओर से उदासीन नहीं हू। कल रात को नदी के किनारे से पाँच घुड़सवार एक साथ रवाना हुए थे। सुबह में जब वे फिर अपनी यात्रा पूरी कर लिये चले, तब केवल चार ही साथ रहे, पाँचवाँ उनसे अलग हो गया था। इस समय दो पहर दिन चढ़ आया है। उस पाँचवें सवार के अपने साथियों से अलग हुए पाँच-छः घंटे से अधिक हो गया।"

गुरुदत्त चौंक पड़ा—उसने आश्चर्य के साथ कहा—"यह क्या? क्या उन चारों ने उस पाँचवें सवार को धोखा देकर मार डाला?"

अपरिचित,—"मालूम तो ऐसा ही पड़ता है। उस पाँचवें ने ही उन चारों बदमाशों को उस कुमारी को उड़ा लाने के लिये नियुक्त किया था; पर वे चारों उससे विश्वासघात कर बैठे। बेटा! मुझे तो यह आशा नहीं होती कि तुम फिर उस सुंदरी को देख सकोगे। वे सब बड़े भारी डाकू हैं, और रुपए के लिये चाहें जिसके प्राण ले सकते हैं। अगर वे अपने दलवालों से जा मिलने के पूर्व ही पकड़ लिए जायँ तब तो ठीक है, नहीं तो उतनी बड़ी

जमात के सामने हम दो आदमियों की दाल नहीं गलेगी। बेटा! अच्छा हो, यदि तुम उस सुंदरी को भूल जाओ, और सानंद घर लौट जाओ। बड़ी बुरी सायत में तुमने उस मोहिनी के दर्शन किए थे।"

गुरुदत्त कुछ क्षण खड़ा होकर सोचता रहा। इसके बाद उसने राह बदल दी, और दक्खिन का रास्ता छोड़, पश्चिम का रास्ता पकड़ लिया। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें एकदम वृक्ष-हीन प्रांतर मिला, जिसकी भूमि क्रमशः उच्च होती चली गई थी। जाते-जाते उन्हें एक जगह एक भारी खड्डा दिखाई दिया, जिसमें केवल एक ही वृक्ष उगा हुआ था। उस वृक्ष के पत्ते बड़े-बड़े थे, और वह विचित्र प्रकार से नीचे को ओर झुका हुआ था। अपरिचित ने उस वृक्ष की ओर देखते हुए कहा,—"पुत्र! यह 'आशाफल' नामक बड़ा विषैला वृक्ष है। इसमें फल-फूल नहीं लगते केवल पत्ते ही होते हैं। इन पत्तों की यह तासीर है कि यदि इन्हें मसलकर किसी की नाक में सुँघा दिया जाय, तो वह आदमी इसकी गंध से ही बेदम होकर मर जाय। रहो, मैं कुछ थोड़े-से पत्ते तोड़ता हूँ।"

यह कह, उसने अपने बर्छे से छेद-छेदकर उस वृक्ष के सूखे पत्तों को, जो ज़मीन में गिर हुए थे, उठा लिया, और अपनी कमर के फेंटे में लपेट लिया। इसके बाद वह उस उच्च-भूमि को पार कर लता-मण्डप के पास आ बैठा। गुरुदत्त भी उसके पीछे-पीछे चला आया। वहीं बैठकर वे दोनों विश्राम करने लगे।

उस समय सूर्य अस्त हो रहे थे। थोड़ी ही देर में उनकी

अंतिम किरण-माला भी अदृश्य हो गई, और पृथ्वी पर घोर अंध-कार छा गया। कुछ ही क्षण बाद आसमान में असंख्य तारे छिटक आए। अब के उस अपरिचित मनुष्य ने गुरुदत्त से कहा,—"पुत्र! चारों हाथ-पैरों के बल चलते हुए मेरे पीछे पीछे चले आओ—देखना, ज़रा भी इधर उधर न होना।"

यह कह, वह चौपाए की तरह चलने लगा; गुरुदत्त भी उसका अनुकरण करने लगा। उनके नीचे केवल लताओं का ढेर था—उनके पत्ते उनके चलने से धीरे-धीरे मर्मर-शब्द करने लगे। दो-ही-चार पग आगे बढ़ने पर अपरिचित ने कहा,—"देखो, आगे रास्ता बंद है—मैं रास्ता करता हूँ। तब तक तुम यहीं ठहरो।" यह कह, उसने अपने बर्छे से हटा-हटाकर लताओं के समूह को अलग कर रास्ता कर दिया। तब दोनों फिर आगे बढ़े। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर गुरुदत्त के साथी ने बर्छे से उस लता-समूह के ऊपर गोदना शुरू किया। क्रमशः कुछ देर तक ऐसा ही करते रहने पर उसमें एक हाथ के बराबर फाँक पैदा हो गई। यह देख, उसने कहा,—"मेरे प्यारे लड़के! अब यदि तुम कुछ तमाशा देखना चाहो, तो दम साधकर इसके नीचे देखो!"

गुरुदत्त ने सहारे के लिये उस मनुष्य का हाथ पकड़ लिया, और नीचे की ओर सिर झुकाए देखने लगा। अपरिचित ने पूछा,—"क्या देखा?"

गुरुदत्त ने एक अजीब तमाशा देखा। उसे ऐसा मालूम पड़ा, मानों वह एक बड़ी भारी गहरी खाई है, जिसके तल-देश का कोई

पता ही नहीं कि कितना गहरा है। एक प्रकार की धुंधली रोशनी भी वहाँ दिखलाई दी ; पर वह रोशनी इतनी धीमी थी कि कुछ भी साफ़ नहीं दिखलाई देता था। उसने सोचा, कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ ? उसने आँखें मलकर फिर नीचे की ओर नज़र की। अब के भी केवल वही अतल-गर्भ गुफा दिखाई पड़ी। हाँ, इस बार उसे बीच-बीच में पुरानी लकड़ी के खम्भे-से भी गड़े मालूम पड़े। ज़रा ग़ौर से देखने पर मालूम पड़ा कि उन खंभों के सिरे एकदम ऊपर तक चले आए हैं। अपरिचित के पूछने पर गुरुदत्त ने यही सब बातें उसे बतलाईं।

सुनकर अपरिचित ने कहा,—"पुत्र! यह सब एक ही बड़े भारी वृक्ष के भिन्न-भिन्न धड़ हैं। हम लोग एक हज़ारों वर्ष के पुराने बड़ के पेड़ के ऊपर मौजूद हैं, जो बहुत दूर तक फैला हुआ है, और ये सब लता-गुल्म उसीके ऊपर उगे हुए हैं। प्रकृति ने मानों इस गुफा के ऊपर यह छप्पर-सा छा दिया है। इसके नीचे जो खाई है, वह ज़मीन की सतह में है—अँधेरे के कारण तुम्हें इसकी गहराई का अन्दाज़ा नहीं होने पाता।"

यह सुन गुरुदत्त सब बातें समझ गया। आज तक वह सदा महलों में रहता आया है। उसने कभी जंगलों की सैर नहीं की। इसी लिये उसे यह नहीं मालूम था कि प्रकृति ने जंगलों मे कैसी-कैसी विचित्र रचनाएँ कर रक्खी हैं। वह बड़ का पेड़ इस समय सैकड़ों पेड़ों में विभक्त हो रहा है, और प्रत्येक पेड़, उसकी शाखा होता हुआ भी, स्वतन्त्र वृक्ष बन रहा है। लताएँ सचमुच उनपर

छप्पर का काम दे रही है। गुरुदत्त और उसका साथी उसी विशाल छप्पर पर धीरे-धीरे रेंग रहे थे। ऊपर से भी लता-पत्रों का छत्र-सा तना हुआ था

अपरिचित ने कहा,—"अब अपने प्राणों को हथेली पर लिए हुए धीरे-धीरे रेंगते हुए चले आओ। याद रहे, जहाँ एक भी डाल टूटी, अथवा तनिक भी खड़खड़ाहट का शब्द सुनाई दिया कि हम दोनों ही गए।"

यह कहकर वह थोड़ी ही दूर अग्रसर हुआ था कि गुरुदत्त के कानों में पत्तों के खड़खड़ाने, और डाल के धीरे से चरमराने का शब्द सुनाई दिया। सुनते ही वह काँप गया, और बड़े ध्यान से देखने लगा कि वह अपरिचित मनुष्य क्या कर रहा है। उसने देखा कि अपरिचित ने अपना बर्छा एक शाख़ पर गड़ा रखा है, और उसकी बल-परीक्षा कर रहा है। शायद उसके कानों में भी वही शब्द सुनाई पड़ा था, जिसे सुनकर गुरुदत्त चौंक पड़ा था। इसी लिये वह अपना बर्छा ताने चुपचाप खड़ा हो गया था। एक साथ हज़ारों तरह के भाव गुरुदत्त के कलेजे में उथल-पुथल मचाने लगे। आशा, आशंका और आतंक के भाव उसके हृदय में हिलोरें मारने लगे। थोड़ी देर तक कान लगाए रहने पर भी जब वह शब्द फिर न सुनाई दिया, तब वे दोनों फिर पहले की अपेक्षा अधिक सावधानी के साथ अग्रसर होने लगे। उसी समय उन्होंने देखा कि एक स्थान पर ऊपर का लता-मण्डप कुछ हट-सा गया है, और तारा-गणों की क्षीण

प्रभा उसके भीतर से प्रवेश कर रही है। दोनों ने देखा कि नीचे उस प्रकाण्ड वृक्ष का असली और बृहदाकार धड़ खड़ा है। नीचे के लता-पत्तों को थोड़ा-सा हटाकर अपरिचित ने गुरुदत्त से नीचे देखने का इशारा किया। गुरुदत्त का हृदय हज़ारों भावनाओं के एक ही साथ उदय हो आने से बाँसों उछलने लगा। कोई ६०-७० हाथ नीचे थोड़ी-सी सूखी पत्तियाँ बटोरकर उनके ढेरमें आग लगा दी गई थी, जिसकी रोशनी से वहाँ ऐसा उजेला हो रहा था कि जो चार मनुष्य उसके पास सोए हुए थे, उनकी सूरतें साफ़ नज़र आती थीं।

परंतु सबसे अधिक अचंभा उसे यह देखकर हुआ कि वहाँ एक छोटा-सा तंबू गाड़ा गया है, जिसके ऊपर का भाग एक दम खुला हुआ है। इसी लिये उसने उसके भीतर सोई हुई उस कुमारी कन्या को भी स्पष्ट देख लिया, जिसकी खोज में वह निकला था। वह नीचे जलनेवाली आग की रोशनी के सहारे उस सुंदरी की रूप-सुधा अतृ. नयनों से पान करने लगा। उसके मुख का आधा भाग ही उसे दिखाई देता था; क्योंकि वह करवट फेरे सोई हुई थी, और अपना एक हाथ अपनी छाती के नीचे दबाए हुई थी। दूसरा हाथ भी ऊपर से आकर उसके साथ मिल रहा था। गुरुदत्त का हृदय एक ही क्षण में सौ-सौ बार तड़पने लगा। उसे इस अवस्था में पड़ी देख, वह अपने भाग्य को कोसने लगा। इसी समय उसने देखा कि सुंदरी ने ही जान-बूझकर दोनों हाथ नहीं इकट्ठे कर रखे हैं, बल्कि उसकी कलाइयाँ

एक रस्सी से बड़ी मज़बूती के साथ बाँध दी गई है, इसीसे उसके हाथ जुड़े हुए हैं। साथही उसके पैर भी बँधे हुए हैं। इस समय वह बेचारी एकदम लाचार और बेबस हो रही है।

(३)

गुरुदत्त के जी में आया, कि अभी यहाँ से नीचे कूद पड़ूँ, और अपनी प्रेयसी को कंधे पर उठा पेड़ के सहारे ऊपर चला आऊँ। पर उसी समय यह भी ख़याल हो आया, कि क्या मैं यह काम उन चारों की नज़रें बचाकर कर सकता हूं? यहाँ तो ज़रा-सी आहट पाते ही उनके उठकर हमला कर देने का भय बना हुआ है, फिर यह कैसे हो सकता है? यह भी तो संभव है, कि कहीं एकाएक मुझे तंबू के भीतर आया देख, सुंदरी भय से चिल्ला उठे, और उसकी आवाज़ सुन वे चारों उठकर मुझे मार डालें। नहीं, मुझे पहले उस सुंदरीपर यह बात प्रकट करनी चाहिए, कि मैं उसका अपरिचित होता हुआ भी मित्र हूँ, और उसकी रक्षा करने के लिये यहाँ तक चला आया हूँ। पर यह काम भी कैसे किया जाय? सोचते-सोचते उसका दिमाग़ चक्कर खाने लगा।

इसी तरह बड़ी देर तक सोच-विचार करते रहने के बाद उसे एक तरकीब सूझ गई। उसने सोचा कि इसीकी आज़मायश करनी चाहिए—यदि यह तरकीब काम कर गई, तो अच्छा ही है, नहीं तो इसके भाग्य में जो लिखा होगा, वह तो होकर ही रहेगा; रही यह बात कि कहीं मैं भी न मारा जाऊँ, सो इसकी कुछ चिंता नहीं।

उसी तरकीब के बारे में आपस में विचार और परामर्श करने के अनंतर दोनों बड़ी सावधानी के साथ उसी प्रधान वृक्ष-कांड की डालियों के सहारे नीचे उतरने लगे। उतरते-उतरते वे उस तंबू के ठीक ऊपरवाली डाल पर पहुँच गए। वहाँ पहुँचते ही गुरुदत्त ने जी को खूब कड़ा करके वह कड़ा, जो उस सुंदरी ने उस दिन उसके सामने निशानी के तौर पर गिरा दिया था, नीचे फेंक दिया। कड़े को नीचे फेंककर वह दोनों हाथों से हृदय थामे हुए चुपचाप अपने इस कार्य के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा। उसने सोचा,—"क्या वह मेरी इस कारखाई का मतलब समझ सकेगी?" इसी समय उसने देखा, कि कड़े के गिरने का शब्द कानों में पड़ते ही सुंदरी घबराकर जग पड़ी, और उसने आँखें खोल दीं। इसी समय उस कड़े में जड़े हुए रत्न भी चमक पड़े। यह देखकर सुंदरी चौंक पड़ी, और अपने बँधे हुए हाथों को आगे बढ़ाकर उसने उस कड़े को उठाकर ग़ौर से देखना शुरू किया। क्षण-भर में उसे सारी बातें याद हो आईं। उसे स्मरण हो आया कि उसीने अपना यह कड़ा एक अपरिचित व्यक्ति को अपनी विपत्ति की सूचना देने, और सहायता की प्रार्थना करने के लिये उस दिन कोठे से नीचे गिरा दिया था। उसने सोचा,—"तो क्या उस अपरिचित ने मेरे इशारे को समझकर यहाँ तक मेरा अनुसंधान किया, और अब वह कहीं पास ही आ पहुँचा है? पर वह कहाँ है? और यदि वह नहीं आया, तो फिर यह कड़ा यहाँ कैसे आ गया?"

सोचते-सोचते एकाएक उसकी दृष्टि ऊपर की ओर चली गई। उस समय गुरुदत्त नीचे झाँक रहा था। सुंदरी ने उसकी सूरत साफ़ देख ली। नज़रें चार होते ही गुरुदत्त ने मुँह पर हाथ रखकर उसे चुप रहने का इशारा किया। सुंदरी इस इशारे को समझ गई, और कुछ भी न बोली। तब अपनी और अपने अपरिचित साथी की पगड़ियाँ लेकर गुरुदत्त ने बड़ी दृढ़ता से वृक्ष की एक शाखा में बाँध दीं और उन्हींके सहारे नीचे उतरने लगा। यह बनावटी कमंद उसने ऐसी जँचकर बाँधी थी कि उसने गुरुदत्त को एकदम तंबू के अंदर ही उतार दिया। उतरने के साथ ही उसने अपनी तलवार से सुंदरी के हाथ-पैरों के बन्धन काट डाले, और उस तंबू के पास लटकते हुए एक कपड़े को थैले की तरह बनाकर उसने पगड़ियों की बनी हुई उस कमंद में बाँध दिया। इसके बाद उसने सुंदरी से उस थैले में बैठ जाने को कहा। सुंदरी ने वैसा ही किया। ऊपर बैठे हुए वन-वासीने कमंद को बड़े ज़ोर से खींचना शुरू किया।

देखना चाहिए, सुंदरी ऊपर पहुँच पाती है या नहीं?

गुरुदत्त अब उन तीनों मनुष्यों को देखने लगा कि वे ज़रा भी हिलते-डोलते हैं या नहीं? जब उसने उन्हें उसी तरह चुपचाप सोता हुआ पाया, तब ऊपर को दृष्टि कर यह देखना चाहा कि सुंदरी ऊपर पहुँच गई या नहीं। उस समय कमंद एक हाथ और खींचने को रह गई थी। यह देख, उसका हृदय हर्ष से भर गया। उसने सोचा,—"अब क्या है? मेरा

उद्देश्य सफल हो गया, और मेरा पुरस्कार भी मेरे हाथ में आ गया है!"

इसी समय उसने देखा, कि कमंद खींचते-खींचते उस अप-रिचित मनुष्य के हाथ, न-जाने क्यों, एक-ब-एक रुक गए, और कोई चीज़ ऊपर से धीमी आवाज़ के साथ नीचे गिर पड़ी। आवाज़ सुनते ही वह चौंक पड़ा, और सामने की ओर देखा, तो कोई काली-सी चीज़ उसीकी ओर अग्रसर होती हुई मालूम पड़ी। उसने सोचा,—"अब यह कैसी विपद् आई?"

न-जाने क्या सोचकर उसने अपना दाहना घुटना ज़मीन में टेक दिया, और अपनी तलवार ताने, छाती अकड़ाए, खड़ा रह गया। इस बार उसने अपने को एक भूखे चीते के सामने पाया, और भय के मारे उसकी रगों में खून बड़ी तेज़ी के साथ दौड़ने लगा। चीते ने मनुष्य की गंध पाते ही बड़े ज़ोरों से गुरुदत्त पर हमला किया। चीते ने उसकी कोहनी पर इस ज़ोर का पंजा मारा, कि उसका हाथ काँप गया, और ख़ून की धारा बह चली।

परंतु वह घड़ी उसके लिये हाथ के ज़ख्म पर विचार करने की नहीं थी। उस समय तो जानों के लाले पड़ रहे थे। इसी लिये उसने एक हाथ से तलवार निकालकर सीधी उस चीते की आँख में घुसेड़ दी। तलवार उसकी आँख को पार करती हुई उसके मस्तिष्क में घुस पड़ी। जानवर दर्द से तड़पता हुआ ज़मीन में गिर पड़ा, और कुछ ही देर छटपटाने के बाद वह सदा के लिये सो गया।

अब तो गुरुदत्त, स्वप्नोत्थित की भाँति संतोष की साँस लेता हुआ, एकाएक उठ खड़ा हुआ ; पर चीते के किए हुए गहरे ज़ख्म के दर्द ने अब के उसके मस्तिष्क पर आक्रमण किया, और वह झट बेहोश होने लगा—मानों उसकी सारी संज्ञा का हरण कर मृत्यु बड़ी तेज़ीके साथ अग्रसर होने लगी। परन्तु थोड़ी ही देर में आप से आप उसकी संज्ञा लौट आई ; पर कमज़ोरी हद दर्जे की थी। उसने काँपते हुए हाथों से उस लटकती हुई कमंद को पकड़ लिया। किसी-किसी तरह उस कमंद को थामे हुए वह ऊपर चढ़ने लगा। ऊपर खड़े अपरिचित ने उसे भी बड़ी जल्दी के साथ ऊपर खींच लिया।

इसी समय एक दूसरा चीता उन लोगों पर झपटा ; पर अपरिचित ने अपनी ढाल ताने हुए उसकी छाती में बर्छा घुसेड़ दिया। वह भी तड़पता हुआ वहीं का वहीं रह गया। अपरिचित ने अब की बार अपनी कमर से "आशाफल" नामक विषैले वृक्ष के उन सूखे पत्तों को निकालकर नीचे जलती हुई आग में डाल दिया। उन पत्तों के आग में पड़ते ही धुएँ का बादल-सा उठ खड़ा हुआ, और जो चार बदमाश उस अग्नि-कुंड के पास सोए थे, उनकी नाकों में घुसने लगा। थोड़ी ही देर में उस विष-वृक्ष के पत्तों ने अपना असर दिखाया, और वे चारों, दम घुटने के कारण, भीतरही-भीतर तड़पकर मर गए।

इस तरह अपने तमाम दुश्मनों को ख़तमकर, उस अपरिचित मित्र की सहायता से उस भुवन-मोहिनी का उद्धार-साधन कर,

गुरुदत्त अपनी बहन कमला के पास चला आया, और अपनी प्रियतमा को उसके हाथों में सौंपकर बड़ी उत्कंठाके साथ उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा, जब कि वह अपने हृदय का सारा प्रेम उसके करकमलों में समर्पण कर देगी।

कहानीवाले ने कहा,—"महाराज! प्रेम इसी प्रकार के विचित्र हेर-फेर दिखलाया करता है, और इसके प्रभाव में पड़े हुए मनुष्य उसी तरह अपनी जान हथेली पर लिए हुए विपत्ति के मुख मे दृढ़ हृदय के साथ घुस जाते हैं, जैसे गुरुदत्त ने अपनी प्राण-प्यारी को पाने के लिये उस जंगल में अपने को विपद् में डाल दिया था। अब कल मैं आपको एक इससे भी अधिक विचित्र कहानी सुनाऊंगा, जिसमें प्रेमी-युगल के सांमुख बड़ी विकट समस्याएं आ उपस्थित हुई थीं, और उन्हें उन सबका समाधान कर बड़ी-बड़ी कठिनाइयों के बाद अपनी मनस्कामना की सिद्धिके दिन देखने नसीब हुए थे।"

यह कह, वह राजा को बड़े आदर से अभिवादन कर वहाँ से अपने घर चला गया।

कुमारी-हरण।

(१)

कहानीवाले ने कहा, —

हे प्रेम-कथाओं के प्रेमी श्रोता! अंबर के राजकुमार उदय सिंह, दिल्ली-नरेश भरत के चचेरे भाई थे, और उन्हींकी तरह अभी अल्पवयस्क नवयुवक थे। उनका हृदय कल्पना प्रवण, और विचित्रता-प्रिय था। एक बार एक सुचतुर गायक ने उनके पिताके पास आकर कुछ ऐसी प्रेम-कथाएँ गीतों में गा-गाकर सुनाईं थीं, जो आज तक उन्हें कभी न भूलीं। उन कथाओं में अनेक अलौकिक रूप-लावण्य-संपन्ना सुन्दरियों के चरित्र और अनेक अद्भुत घटनाएँ वर्णित थीं। इसीसे कल्पना-प्रिय राजकुमार को बड़ी उमर तक वे बातें न भूलीं। उसी समय से उनके दिमाग़ में यह बात जम गई थी कि उन्हें भी ऐसी ही किसी अपार-सौंदर्य-शालिनी रमणी से प्रेम करना चाहिए, और उसे बड़ी-बड़ी विपत्तियों तथा विघ्न-बाधाओं को पार कर प्राप्त करने के अनंतर उसीसे विवाह करना चाहिए।

परंतु एक दिन वे यह सुनकर बड़े ही दुःखित और निराश हुए कि उनके पिता ने उनके लड़कपन में ही काश्मीर-नरेश से यह प्रतिज्ञा की थी कि वह राजकुमार की शादी काश्मीर-पति की कन्या

से ही करेंगे। राजकुमार को अपने पिता की यह प्रतिज्ञा पहले नहीं मालूम थी। इसी लिये जब उनके किशोरावस्था को प्राप्त होते ही काश्मीर-नरेश का भेजा हुआ एक दूत उनके विवाह की बात पक्की करने के लिये अंबर के दरबार में आया, तब वह बड़े ही चक्कर में पड़े। जिस समय उनके पिता ने राजनीतिक कारणों से काश्मीर-नरेश के साथ यह प्रतिज्ञा की थी, उस समय राजकुमार की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। इसी लिये वह इस बात को भूल गए थे। अस्तु; यह समाचार सुनते ही राजकुमार दौड़े हुए अपने पिता के पास चले आए, और बोले कि आप कृपा कर अपनी की हुई प्रतिज्ञा के पाश से मुझे मुक्त कर दीजिए। परंतु वृद्ध राजा ने उनकी बात नहीं मानी। वह अपनी बात के धनी और प्रतिज्ञा के पूरे थे। इसी लिये वह अपनी प्रतिज्ञा का मूल्य कम करने को तैयार न हुए। उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा,—"पुत्र! ऐसा तो कभी नहीं हो सकता कि मैं अपनी प्रतिज्ञा से टल जाऊँ।" इसके बाद वह काश्मीर के राजदूत से बोले,—"एक महीने के भीतर ही दूल्हा अपनी दूल्हन को लाने आयगा।"

उसी दिन रात को राजकुमार अपने कमरे की खिड़की के पास चुपचाप खड़े हुए सामने के दृश्य देख रहे थे। इसी समय उन्होंने देखा कि खिड़की के उस पार नीचे से एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा निकला, और उनके पास आकर खड़ा हो गया। सामनेवाले आंगण में काश्मीर से आए हुए दूत और उनके साथी राज-महल के रक्षकों के साथ बैठे हुए हंसी-दिल्लगी कर रहे थे। बूढ़े

की दृष्टि उन दिल्लगीबाज़ों की तरफ़ नहीं थी। वह राजकुमार का ही चेहरा देख रहा था।

राजकुमार ने कहा,—"अबे! तू यहाँ क्यों आया?"

बूढ़े ने कहा,—"जनाब! आपकी तबियत बहलाने के लिये आया हूँ।"

राजकुमार चौंक पड़े। उन्हें स्मरण हो आया कि एक दिन यही वृद्ध चारण मुझे प्रेम का पाठ पढ़ाने के अपराध में इस दरबार से निकाला गया था। फिर आज यह क्योंकर मेरे पास आने का साहस कर सका, यह बात उनकी समझ में नहीं आई। इसी लिये उन्होंने फिर पूछा,—"क्या तुम काश्मीरवाले राजदूतों और राजकर्मचारियों के साथ ही यहाँ आए हो?" यह सवाल उन्होंने इसीसे किया, चूँकि उन्होंने अफ़वाह सुनी थी कि यहाँ से निकाले जाने पर वह चारण काश्मीर-दरबार में नौकर हो गया है, और वहाँ भी वही काम कर रहा है, जो यहाँ करता था।

बूढ़ा बोल उठा,—"मैं उनके साथ भी हूँ, और अलग भी। उनके अनुकूल भी हूँ, और प्रतिकूल भी। आइए, शीघ्र जाकर अपनी वाग्दत्ता पत्नी से मिलिए। यदि आप अपने हृदय के सच्चे निकले, तो आपका सब तरह से भला ही होगा।"

यह कहकर, वह वृद्ध वहाँ से हट गया, और उसी भीड़ में मिलकर अदृश्य हो गया।

(२)

सचमुच राजकुमार को एक महीने के भीतर ही अपनी वाग्दत्ता

पत्नी को लिवा लाने के लिये जाना पड़ा। उस समय उनकी वह होनहार पत्नी पहाड़ियों पर बने हुए ग्रीष्मावास में गरमी के दिन बिता रही थी। उन्हें वहीं जाकर अपनी पत्नी को ले आना था।

उन्हें काश्मीर की ओर रवाना करने के बाद ही उनके पिता सौ तेज़ ऊँट-सवारों के साथ एक दूसरी राह से उनके पहले ही काश्मीर पहुँच गए। राजकुमार उदयसिंह अनमने-से यात्रा कर रहे थे। इसी लिये वह ज़रा देर से वहाँ पहुँचे। जिस दिन वह वहाँ पहुँचे, उस दिन उनका बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ, और निश्चित हुआ कि कल ही राजकुमार अपनी भावी पत्नी से मिलेंगे। आज की रात उन्हें अपने भावी जीवन के संबंध में विचार करने का अंतिम अवसर मिला।

वह अपने तंबू में अकेले बैठे हुए कल्पना के राज्य में विचरण कर ही रहे थे कि इसी समय अकस्मात् उस अंधकार के भीतर से एक छाया-मूर्त्ति प्रकट हुई, और उनके चरणों पर आ गिरी। एक ही क्षण बाद उसने उनके पैरों पर से उठकर राजकुमार के हाथ में ताड़ के पत्ते पर लिखा हुआ एक पत्र दे दिया। उसमें यही संदेशा लिखा हुआ था,—

"राजकुमार को मेरा आशीर्वाद। यदि आप आज ही उससे मिलना चाहते हों,जिसे भाग्य ने आपकी सहधर्मिणी बनाना निश्चित किया है, तो सिर्फ़ एक आदमी को साथ लिए हुए ग्रीष्मावास के पीछेवाले लक्ष्मी-देवी के मन्दिर में चले आइए। यह ग्रीष्मावास पहाड़ी के उस पार बना है।—ज्योतिषी।"

यह पत्र पढ़ते ही राजकुमार हैरत में आ गए, और अपने सह-चरों में सर्व-प्रधान बलराम को अपने पास बुलाकर बोले,—"जाओ, शीघ्र दो तेज़ घोड़े कसवाकर ले आओ। इस समय मुझसे और कुछ न पूछो।"

यह आज्ञा पाकर बलराम को बड़ा आश्चर्य हुआ; पर इस आज्ञा का उल्लंघन करना उसकी शक्ति से बाहर था, इसी लिये बिना कुछ पूछे ही दो घोड़े कसकर तुरत ही राजकुमार के पास ले आया। तब निर्भय-निःशंक हृदय से राजकुमार अपने उस साथी को साथ लिए, घोड़ा दौड़ाते हुए, उस पहाड़ी के पास आ पहुँचे, जिसके निकट ही लक्ष्मी-देवी का वह मंदिर बना हुआ था। पास ही पर्वत के ऊपर सुन्दर ग्रीष्मावास बना हुआ था।

वहाँ पहुँचकर राजकुमार ने अपने प्रिय सहचर से पूछा,—"बलराम! तुम मुझे प्यार करते हो या नहीं?"

बलराम ने बड़े आदर के साथ सिर झुकाए हुए कहा,—"यह कैसा सवाल है, अन्नदाताजी? आप मेरे मालिक, रक्षक, प्रति-पालक और सर्वस्व हैं,—मैं आपका दासानुदास और सेवक हूँ। यदि आवश्यक हो, तो मैं इसी क्षण अपना यह सिर भी आपके लिये कटा दे सकता हूँ।"

राजकुमार ने कहा,—"बहुत ख़ूब! आज से मैं तुम्हें अपना सगा भाई मानता हूँ।"

इसके बाद वह आप-ही-आप कहने लगे,—"यहाँ का कोई आदमी न तो मुझे ही पहचानता है, न बलराम को ही।"

आवाज़ धीमी होने पर भी बलराम के कानों में जा पहुँची। उसने पूछा,—"कहिए, श्रीमन्! मेरे लिये क्या आज्ञा है? मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये सदैव प्रस्तुत हूँ।"

यह सुनते ही राजकुमार ने अपनी पगड़ी में टँका हुआ हीरों का एक चाँद और गले का मुक्ता-हार उतारकर बलराम के हाथ में दे दिया। बलराम ने उन्हें यथास्थान धारण कर लिया। अब तो बलराम ही राजकुमार, और राजकुमार ही दरबारी मालूम पड़ने लगे। वह मन-ही-मन राजकुमार का अभिप्राय ताड़ गया। उसने झुककर राजकुमार को सलाम किया, और कहा,—"अब आप जैसा कहिए, वैसा करूँ।"

राजकुमार ने कहा,—"बस इस समय तुम्हीं मेरा स्थान ग्रहण करो, और नाटक के चतुर अभिनेता की भाँति मेरा प्रतिनिधित्व करो। मैं तुम्हारा मुसाहब बन जाता हूँ।"

(३)

जब वे दोनों लक्ष्मीदेवी के मन्दिर के पास पहुँचे, तब वहाँ काश्मीर का राजज्योतिषी भी उन्हें खड़ा मिला। वह एक बूढ़ा आदमी था, और जाड़े के कारण बड़ा-सा लबादा शरीर पर डाले हुए था। उसने इन्हें देखते ही घोड़े पर से नीचे उतर आने के लिये कहा। जब वे नीचे उतर पड़े, तब ज्योतिषी ने कहा,—"अब आप लोग मेरे पीछे-पीछे चले आइए।"

उन्हें लिए हुए वह ज्योतिषी उस स्थान पर आ पहुँचा, जहाँ पहाड़ी से झरना जारी हो रहा था, और जल-प्रपात-सा बन रहा

था। उसके ऊपर एक लंबी और अँधेरी गुफा-सी दिखाई देती थी। जल-प्रपात की बगल में एक पतली-सी राह मालूम पड़ती थी, जिसपर जंगली बकरे या सिंह-व्याघ्र के भय से भागते हुए मनुष्य किसी तरह चलकर उस अंधकारमयी गुफा में आश्रय ग्रहण कर सकते थे, जहाँ पहुँचकर वह राह ख़तम हो गई थी।

ज्योतिषी ने बड़े ही धीमे स्वर से कहा,—"वह जो सामने गुफा दिखाई दे रही है, उसका नाम 'मूर्त्तियों की गुफा' है। राज-कुमार! (यह बात उसने बलराम को ही राजकुमार समझकर कही) मैंने आपकी जन्म-कुण्डली देखी है। उसीके बल पर मैं यह कहने को तैयार हूँ कि जब चंद्रमा का कर्कटके साथ संयोग होगा, तब आप उस गुफा में रखे हुए जादू के आईने में अपनी विधि-निर्दिष्ट सहधर्मिणी को देख पाएँगे। उसे देवताओं ने ही आपके लिये पत्नी निर्द्धारित कर रखा है, मनुष्य इसमें हेर-फेर नहीं कर सकता।"

यह सुन, बलराम, इस विचित्र विधि-विधान का रहस्य जानने के लिये, देवी की प्रार्थना करता हुआ, ग्रीष्मावास की ओर न जाकर पहाड़ी पर चढ़ने लगा। उसके चले जानेपर राजकुमार उदय, अपने भाग्य का लिखा देखने के लिये अधीर होते हुए, बलराम के चले जाने पर भी ऊपर लिखी गुफा के सामने आकर खड़े हो रहे। इसे ही कहते हैं दैव-गति! यह जब जो चाहती है, वही होता है। मनुष्य लाख सोचे, तोभी उसका किया कुछ भी नहीं होता।

ऊपर हमने जिस पतली राह का ज़िक्र किया है, वह झरने के पास से सीधो ऊपर की ओर चली गई थी। थोड़ी ही दूर जाते-न-जाते उसे घनी लताओं और जंगली पौधों का समूह दिखाई दिया। परंतु ज्योतिषी उससे यह कहना भूल गया था कि कुछ दूर जाने पर वह राह दाहनी ओर मुड़ी हुई है, और उसी ओर घूमने पर ग्रीष्मावास में पहुँचा जा सकता है। उसने यह बात भी उसे नहीं बतलाई थी कि ऊपर से जो लगातार पानी का झरना झरता रहता है, उसने नीचे के पत्थर को ऐसा चिकना और आईने की तरह साफ़ कर रक्खा है कि यदि ऊपर से कोई नीचे की ओर झाँके, तो उसे ठीक उसी प्रकार अपनी परछाईं उसपर पड़ती दिखाई देगी, जैसी आईने में दिखाई देती है।

बलराम के चले जाने पर राजकुमार ने अकस्मात् उसकी ओर दृष्टि की, तो उस झरने के ऊपरवाली अंधकारमयी दरी के प्रस्तर-फलक पर एक मूर्त्ति प्रतिबिंबित होती हुई दिखाई दी। वह अब तक इसी सोच में डूबे हुए थे कि वह राजकुमारी, जिसे मैंने आज तक कभी देखा भी नहीं, और जिसके साथ मेरा विवाह होना पूर्णतया निश्चित है, न-जाने कैसी होगी? हो सकता है कि वह परम कुरूपा हो, और इसी लिये बालकपन में ही मेरे पिता से प्रतिज्ञा करा ली गई हो। अपनी उस कल्पित कुरूपा-मूर्त्ति के साथ अब राजकुमार ने उस प्रस्तर-फलक पर प्रतिबिंबित परम सुंदर मूर्त्ति की तुलना की, तब तो वह एकबारगी हर्ष से विह्वल हो गए, और बोल उठे,—"अहा! क्या देवताओं ने इसी भूलोक-दुर्लभा,

ललना-ललाम-भूता को मेरे लिये निर्दिष्ट कर रक्खा है? यह रत्न तो देवताओं के ही घर शोभा पाने योग्य है।"

परंतु न-मालूम वह किस चीज़ की ओर एकटक दृष्टि गड़ाए हुई थी। इसी लिये उनकी आँखें चार न हो सकीं। उन्होंने साफ़ देखा कि सुंदरी के चेहरे पर उदासी छाई हुई है, और वह उस पदार्थ को इच्छा न होते हुए भी वाध्य होकर देख रही है। राज-कुमार ने सोचा,—"तो क्या उसके सामने भी ऐसा ही कोई तिलिस्माती आईना है?"

क्षण-भर बाद ही उन्होंने उस उदासी-भरे चेहरे पर अकस्मात् गहरा परिवर्त्तन होते देखा। उन्होंने देखा कि उसके चेहरे पर की उदासी एकाएक कपूर की तरह उड़ गई, और उसकी जगह आनं-दातिरेक के कारण मधुर मुसक्यान की छटा छा गई है! उन्हें क्या मालूम था कि सचमुच उस सुंदरीने भी उनकी मूर्त्ति का प्रतिबिंब देखा था, और इसीसे वह इतनी पुलकित हो उठी थी! इस समय उसके चेहरे से घूँघट बिलकुल हट गया था, और उसका चेहरा साफ़ दिखाई दे रहा था। परंतु राजकुमार को यह दर्शन-सुख देर तक भोगना नसीब न हुआ। एक ही क्षण बाद वह वहाँ से चली गई।

इतने में एकाएक वही ज्योतिषी, जो इन दोनों को आगे भेज कर वहीं चुपचाप खड़ा रह गया था, लौट आया, और बलराम से आकर बोला,—"अब आप शान्तमन से अपने विश्राम-भवन को लौट जाइए। आपने जो मूर्त्ति उस तिलिस्मी आईने में देखी है, वही आपकी भावी पत्नी है।"

यह सुनते ही एक साथ ही राजकुमार और बलराम दोनो के मुँह से एक चीख़ निकल पड़ी ; क्योंकि अपने स्वामी के पास आने पर उसने भी उसी क्षण एक मूर्त्ति देखी थी, जिसकी माँग मोतियों से सँवारी हुई थी, भौंहों पर लाल और मोती की डोर खिंची हुई थी, और छाती पर नौलखा हार शोभा पा रहा था। उसने यह भी देखा कि वह बैजनी रंग की ओढ़नी ओढ़े हुई थी।

उदयने कहा,—"नहीं, मैंने तो गुलाबी रंगकी ओढ़नी ओढ़े हुए स्त्री देखी है।"

ज्योतिषी ने कहा,—"राजकुमारी की ओढ़नी बैजनी रंगकी है, और उनकी सहचरी की ओढ़नी का रंग गुलाबी है।" यह कह-वह उसी जंगल में अदृश्य हो गया।

दोनों युवक एक दूसरे का मुँह देखने लगे। दोनों के मन में संदेह घर किए हुए था। अब वे समझ गए कि उन्होंने दो भिन्न-भिन्न रूप उस प्रस्तर-फलक पर प्रतिबिंबित होते देखे हैं। अवश्य ही उनमेंसे एक राजकुमारी, और दूसरी उनकी सहचरी है। बल-राम के हृदय में घोर आतंक व्याप्त हो गया। उसने राजकुमार के दिए हुए समस्त राजचिह्नों को उतारकर राजकुमार के चरणों पर डालते हुए कहा,—"देव! यह लीजिए, अपने अलंकार आप ही धारण कीजिए। मैं तो आपका दास हूँ।"

परंतु राजकुमार के हृदय पर इस घटना का ऐसा कुछ प्रभाव पड़ा कि वह स्थिर भाव से खड़े न रह सके, और बेहोश होकर भूमि पर पड़े। क्रूर और निर्दय विधाता ने उन्हें आनन्द और सुख

के शिखर पर पहुँचाकर एकबारगी ज़मीन में गिरा दिया। निराशा और अपमान के भावों ने उन्हें अधमरा-सा बना डाला थोड़ी ही देर पहले उन्होंने सोचा था कि जो मूर्त्ति मैंने शिला में प्रतिबिंबित होते देखी है, वह काश्मीर की राजकुमारी की ही है; पर अब उन्हें मालूम हो गया कि वह राजकुमारी नहीं, वरन् उसकी दासी है। उन्होंने सोचा—"देवताओं ने क्या यही विधान कर रखा है कि काश्मीर-पति की कन्या से मेरे सहचर का विवाह हो, और उसकी सहचरी से मेरा? यह तो बड़ा ही विचित्र विधान है!'

थोड़ी देर बाद होश में आकर राजकुमार ने कहा—"बस, बलराम! अब तो जो बात मुँह से निकल गई, वह निकल गई। अभी तुम इन राजचिह्नों को कुछ देर तक और धारण किए रहो। भाग्य का लिखा भला कौन मेट सकता है?"

[२

आधी रात होने पर राजकुमार उदय राजकुमारी के लिए बने हुए ग्रीष्मावास के नीचे आ खड़े हुए, और अपने मित्र को एक दीवार के ऊपर खड़ा रहकर पहरा देने के लिये कहा। ऊपर से एक वृक्ष की डाल लटक रही थी। उसीको पकड़कर वह महल के पिछवाड़े की दीवार पर चढ़ गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बलराम को भी अपने पास बुला लिया। बलराम ने बहुत-सी लताओं को गूँथकर उन्हीं की रस्सी बट डाली, और उसीके सहारे राजकुमार को नीचे बग़ीचे में उतार दिया।

सारे महल के लोग सोए हुए थे; बाग़ में चारो ओर जो

चंपा की सघन कुंजें थीं उनके भीतर बसेरा करनेवाली चिड़ियाँ भी चुप थीं। हाँ, एक मनुष्य की आँखों में नींद नहीं थी। वह, उस बाग़ के बीचोंबीचवाले बँगले में बैठा, सुंदर स्वर से इसराज बजा रहा था। थोड़ी ही देर में उदय के कानों में एक रमणी की सुकोमल स्वर-लहरी सुधा बरसाने लगी। वह रमणी उस समय निराश प्रेम का संगीत छेड़े हुई थी।

राजकुमार योंही—बिना किसी ख़ास मतलब के ही—उस बाग़ में घुस पड़े थे। वह संगीत सुनकर उनके हृदय के तार भी एक विचित्र स्वर से बज उठे। शायद उस संगीत के साथ उनके हृदय का स्वर एक हो रहा था। इसी लिये वह दिल-ही-दिल में तड़प गए। उसी गंभीर निशीथ में तीन बार कोयल कुहुक उठी। वह भी न-जाने किस आकर्षण से आकृष्ट हो तीन बार 'उफ़्' कर उठे। तीसरी बार उनके मुँहसे ध्वनि निकलते ही उस रमणी का संगीत समाप्त हो गया। राजकुमार ने स्वप्नोत्थित की भाँति सिर ऊपर उठाकर देखा, कि उस बँगले की छत पर कोई खड़ा है, और एकटक नीचे की सघन कुंजों की ओर देख रहा है।

ख़ूब आँखें गड़ाकर देखने पर राजकुमार को मालूम पड़ा, कि वह कोई रमणी है। उसका अपार रूपलावण्य उस अँधेरे में भी ज्योति छिटका रहा था। वह समझ गए कि इसी रमणी को भाग्य मेरे साथ मिलाया चाहता है। इस विषय में उन्हें कोई संदेह न रह गया। थोड़ी देर में चाँदनी उसके मुख पर आ पड़ी। उसी प्रकाश में उन्होंने देखा कि वह रमणी नवयौवन के भार से

खिले हुए फूल की तरह माधुरी विकीर्ण कर रही है। पहले तो उन्होंने केवल उसका मुखड़ा ही देखा था—अब के उसकी पतली साड़ी के भीतर से झलकनेवाले अंग-प्रत्यंग की छटा उनके नेत्रों के सांमुख दिखाई दी। देखते ही उनकी आँखें निहाल हो गई। आनंद की अधिकता के कारण वह बेतहाशा पुकार उठे,—"मेरी प्यारी! मेरी हृदयेश्वरी! मेरी दैव-निर्दिष्ट सहधर्मिणी!" पर ये शब्द शायद उनके हृदय से निकलकर होठों तक ही पहुँचकर रह गए—मुँह से न कढ़े।

और वह रमणी? उसकी भी विचित्र दशा थी। थोड़ी देर पहले उसने जिस पुरुष का प्रतिबिंब-मात्र देखा था, उसीको साक्षात् अपने सामने खड़ा देख, उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह संदेह के झूले पर झूलने लगी। उसकी आत्मा के अंदर तूफ़ान-सा जारी हो गया।

राजकुमार ने कहा—"बस मेरी प्यारी! आओ, चली आओ; घड़ी-भर की भी देर न करो; नहीं तो फिर मेरा-तुम्हारा मिलना मुश्किल हो जायगा।"

यह बात उन्होंने इसी लिये कही, चूँकि वह जानते थे कि भोर होने के पहले ही इस स्त्री को लेकर भाग जाने में ही कल्याण है नहीं तो मुझे बाध्य होकर राजकुमारी के संग विवाह करना पड़ेगा, यद्यपि यही रमणी मेरी विधि-नियोजिता सहधर्मिणी है! यदि इसके लिये राज्य छोड़ना पड़े, तो वह भी स्वीकार है; क्योंकि यदि यह रमणी मिल गई तो मैं समझूँगा, कि एक राज्य ही मिल गया।

परंतु रमणी ने उनकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसके दिमाग़ में न जाने कितनी तरह की बातें उठ रही थीं! इसी लिये वह चुपचाप अचल प्रतिमा की भाँति खड़ी हो रही। तब वह धीरे-धीरे अग्रसर होते हुए उस छत के नीचेवाली कुंज में चले आए। दूर से ही उन्हें उल्लू की आवाज़ सुनाई दी, और वह समझ गए, कि मेरा मित्र मुझे आनेवाली विपद् की सूचना देकर सावधान कर रहा है। यह आवाज़ सुन सुंदरी का भी ध्यान टूट गया।

वह बोली—"अच्छा, चलो—मनुष्य ने तो मुझे किसी औरके हाथों सौंपना चाहा था; पर मालूम होता है कि देवता मुझे तुम्हारी ही दासी बनाना चाहते हैं। मेरे प्रभु! मेरे स्वामी! मेरे राजा! मैं अभी आई।"

राजकुमार ने कहा—"ऐसा क्यों कहती हो, प्यारी? मैं तो तुम्हारा दास, तुम्हारा उपासक और तुम्हारा आज्ञाकारी हूँ। प्रेममयी! अब विशेष विलंब करनेका काम नहीं है।"

परंतु न-जाने क्यों, थोड़ी देर के लिये सुंदरी सहम-सी गई. उसके पैर आगे को न बढ़े। उसने शायद मन-ही-मन विचार किया—"तुम्हें क्या मालूम कि मैं कितना बड़ा त्याग करने जा रही हूँ?"

वाह रे प्रेम! इधर तो राजकुमार उस राजांतःपुरवासिनी साधारण दासी के साथ भाग जाने और अपना घर-द्वार, राज-पाट सब कुछ छोड़ देनेके लिये तैयार थे और उधर वह भी शायद अपने सर्वस्व का त्याग करने जा रही थी! उसने सोचा,—"यही

साधारण दरबारी, जिसके शील-गुण और कुल-प्रतिष्ठा का मुझे कुछ भी पता नहीं है, भाग्य-प्रेरित हो, मेरा स्वामी बनने जा रहा है, और इसीके लिये मुझे आज अपना सर्वस्व दाँव पर लगाना पड़ता है।" यही सब सोच-विचार कर उसने राजकुमार से वहीं ठहरने के लिये कहा, और ऊपर कोठे पर चली गई।

ऊपर के कमरे में चालीस किरणोंवाला एक हीरों का सितारा और अनेक प्रकार की रत्न-राजि एक डिब्बे में रक्खी हुई थी। उसके पास ही मोतियों का नौलखा हार भी पड़ा हुआ था। खूँटी पर दो तरह की ओढ़नियाँ भी टँगी हुई थीं, जिनमें एक बैंजनी रंग की और दूसरी गुलाबी रंग की थी। उसने ओढ़नी लेने के लिये हाथ बढ़ाया ही था कि किसीने पीछे से आकर पूछा,—"तुम क्या मुझे यहीं छोड़ जाओगी?" यह सुनते ही उसका बढ़ा हुआ हाथ रुक गया, और उसने पीछे फिरकर नई आनेवाली से कहा,—"अच्छा, तो आओ, तुम भी मेरे साथ-ही-साथ चलो; पर मेरे यहाँ से जाने के पहले तुम्हीं आगे चलो।" यह कह उसने गुलाबी रंग की ओढ़नी आप ले ली, और बैंजनी रंगवाली उसे दे दी।

इसके बाद वह नीचे उतरकर राजकुमार से आ मिली। उस समय उसके मन में प्रेम, भय, आशंका, संदेह, निराशा आदि कितने ही विरोधी भाव आपस में टकरा रहे थे। वह रह-रहकर यही सोचती थी कि यदि आज का यह प्रयत्न विफल हुआ, तो मेरा जीवन ही नष्ट हो जायगा

राजकुमार ने कहा—"घोड़े तैयार खड़े हैं—जल्दी ही भाग चलो, नहीं तो कल्याण नहीं है।"

"अब तो मैं इन्हीं की हो गई!" यही सोचकर सुंदरी ने चुपचाप उनके कंधे पर सिर रख दिया। राजकुमार ने बड़ी मुहब्बत से उसकी ठुड्डी पकड़कर उसके गाल चूम लिये। परंतु उस समय उसके मुखड़े पर घूँघट पड़ा हुआ था, इसी लिये वह उसका चेहरा अच्छी तरह नहीं देख सके; क्योंकि उस देश की प्रथा के अनुसार अब वह विवाह हो जाने के पहले उसका मुखड़ा नहीं देख सकते थे।

अभी उसके होठों पर चुंबन का रस अच्छी तरह भीना भी नहीं था कि एकाएक वह सुंदरी उनके आलिंगन-पाश से निकलकर अलग हो गई, और चमेली के पेड़ों के झुरमुट में जा छिपी। साथ ही उसने बड़े धीमे स्वर से कहा—"भागो, भागो, जल्दी जाकर किसी कुंज में छिप जाओ, नहीं तो तुम्हारे प्राण नहीं बचेंगे। राजा के अंतःपुर से सटे हुए इस बाग़में इतनी रात को तुम्हारा आना अच्छा नहीं हुआ। मुझे किसी मनुष्य का पद-शब्द सुनाई दे रहा है।"

सचमुच! राजकुमार के कानों में भी किसीके पैरों की आहट मालूम पड़ी। धीरे-धीरे बहुत-से आदमियों की आहट सुनाई देने लगी। उद्यान-मंदिर में पहरा देनेवाले दर्जनों खोजे बाग़ को चारों ओर से घेरकर खड़े हो रहे।

सुंदरी ने फिर कहा—"अब भी समय है! दीवार तड़पकर